गृहस्थियों के लिये उपदेश

यज्ञ और प्राणायामादि की उपयोगिता

परमेश्वर ने मनुष्य योनि पूर्ण बनाई। उसकी पूर्णता उसकी इन्द्रियों से है। कई प्राणी ऐसे हैं जिनकी आंखें नहीं जैसे बिच्छू, कई ऐसे है जिनके कान नहीं जैसे पक्षी, कई ऐसे हैं जिनके हाथ नहीं जैसे पशु-पक्षी आदि, परन्तु किसी की भी वाणी तथा बुद्धि नहीं। परमेश्वर ने मनुष्य को बुद्धि, वाणी, हाथ और इन्द्रियां सारी दीं जिनके द्वारा ज्ञान प्राप्त हो सकता और हम कर्म करते हैं। यदि हमारे आंख और कान न हों तो हम बेकार हैं। साधन इसलिये दिये कि हम उस पूर्ण प्रभु के साथ पूर्ण हो जायें। हम अपूर्ण अशुद्ध हैं, इसलिये कि हमारा प्रकृति के साथ मेल है जो अपूर्ण है। अतः अत्यन्त शुद्ध के सङ्ग से ही पूर्ण हो सकते हैं।

तीन मार्ग—

इस के लिये परमेश्वर ने तीन रास्ते (मार्ग) बनाये।

एक बनाया प्राणायाम, इससे आत्मा के अन्दर बल उत्पन्न होता है।

दूसरी बनाई गायत्री, जो मनुष्य को स्वतन्त्र कर देती है।

तीसरा बनाया यज्ञ, जो सुगन्धित पदार्थों से अन्न, जल, पृथिवी, वायु को शुद्ध करता और अन्तःकरण को पवित्र बनाता है।

आवश्यकता इस बात की है, तीनों को अपना लिया जाय, नहीं तो जो अनुकूल पड़े, वह अपना लें।

यज्ञ करने वाले को पांच चीजें मिलती हैं जैसा कि इस मन्त्र में दर्शाया है।

अयंत इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व चेद्ध वर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्म वर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा॥

पहली वस्तु है चमक, कांति। शरीर कांतिमान्, रूपवान् तथा सुन्दर सुडौल मिलता है। साथ ही नीरोगता प्राप्त होती है। नीरोगता एक मूल्यवान देन है।

दूसरी वस्तु जो यज्ञ से मिलती है वह है प्रजा, सन्तान। ऐसी सन्तान जिसको वेद ने कहा सुख के देने वाली हो और हमारी आंखों के सामने मरने वाली न हो। 'प्रजा' दो शब्दों से बना है प्र और जा से। 'जा' के अर्थ हैं जय को प्राप्त करने वाली सन्तान भीरु और कायर न हो, हर संग्राम में विजय प्राप्त करने वाली हो। परतन्त्र न हो। 'प्र' पूर्ण आयु के भोगने वाली हो।

तीसरी वस्तु है दूध। दूध मिलता है पशुओं से। याज्ञिक के पास अवश्यमेव दूध रहेगा, आलस्य से पशु न रक्खे उसकी इच्छा।

चौथी वस्तु है ब्रह्मवर्चस। ब्रह्म के अर्थ हैं परमात्मा अथवा वेद। जिसको विद्वानों का, महात्माओं तथा सन्तों का अपने आप वास मिलता रहे, जहां परमेश्वर का नाम सदा मिले, उसके अहोभाग्य हैं। जहां प्रतिदिन हवन हो वह बिना वेदवाणी के नहीं हो सकता! यही परमात्मा का नाम लेना, पढ़ना ब्रह्मवर्चस है।

पाँचवीं वस्तु है अन्न। वह गृह अन्न से खाली नहीं रहेगा जहाँ नित्य हवन होता है। गृहस्थी को इन्हीं चीजों की आवश्यकता है।

हमारे ऊपर कितना ऋण है। जो मनुष्य प्रसन्नतापूर्वक ऋण देता है उसकी साख बनी रहती है और जो अदा नहीं करता उसकी साख नहीं रहती, अपयश होता है। इसलिये वेद ने कहा कि अविद्या और अभिमान के कारण विद्या और वायु का विनाश मत करो। परमेश्वर की प्राणप्रद वायु जिससे हमें जीवन मिलता है उसको हम अशुद्ध करते हैं। मुख से, नाक से, चक्षु से, पसीने आदि से मैल हमारे भीतर से निकलता है। उससे वायु अशुद्ध हो जाती है। मल मूत्र विसर्जन से जो दुर्गन्ध निकलती है, उसको हम स्वयं नहीं सह सकते, तो अन्य लोग कैसे सहेंगे। ऐसी दूषित वायु सारे संसार के प्राणी सेवन करेंगे और हम पापी बन जायेंगे। जैसे एक मिर्च को यदि अग्नि में डालें तो जहाँ सब खांसने लग जायेंगे वहाँ हमें अपशब्द कहेंगे। जहाँ गन्दगी अथवा मल पड़ा हो वहां से मनुष्य नासिका बन्द करके गुजरता है। वेद ने कहा है, प्रमाद मत

करो, जितना अन्न, जल, वायु को अशुद्ध करते हो, उतनी शुद्धि भी करो रोज का ऋण रोज ही चुकाते चले जाओ, जो नित्यप्रति हवन द्वारा वायु को शुद्ध करता है मानो वह अपना दैनिक ऋण चुका रहा है और अगले जन्म में वह इस ऋण से मुक्त होगा। आजकल तो घर २ में टट्टियां हैं, उस दुर्गन्ध के परमाणुओं का हम पर प्रभाव पड़ता है परन्तु जिस प्रकार भंगी घर में मल के ढेर रखते हुए भी दुर्गन्ध से नाक-भौं नहीं चढ़ाता और उसे अनुभव भी नहीं होता कि वह दुर्गन्ध है और मस्तिष्क पर बुरा प्रभाव डाल रही है, ठीक इसी प्रकार टट्टियों की दूषित परमाणुओं को हम लोग इतने सह जाते हैं कि फिर हमको कोई कष्ट प्रतीत ही नहीं होता। यही कारण है कि हमारी बुद्धि का ह्रास हो रहा है।

शास्त्रकारों ने कहा कि पाखाने (शौच) पर मिट्टी डाल दें ताकि मल पर मच्छर, मक्खी बैठकर विष न फैलायें।

महायज्ञ—

अग्नि के द्वारा किया हुआ यज्ञ वायु और पदार्थ के परमाणुओं तथा गन्ध को दूर तक ले जाता है, अतः हम ऋण से मुक्त हो जाते हैं। ऐसे व्यक्ति को देवता आशीर्वाद देते हैं। इसका नाम रक्खा पञ्च महायज्ञ, पूर्णमासी से अश्वमेध तक सब यज्ञ हैं, परन्तु दैनिक हवन एक महायज्ञ है, इसलिये कि राजा भी करता है और रङ्क भी करता है। हवन यज्ञ के करने से अहङ्कार नहीं होता। 'इदं न मम' का पाठ यही शिक्षा देता है। घर में अच्छे पदार्थ खाने वाला अहङ्कार नहीं करता परन्तु दूसरों को खिलाने वाला अहङ्कार करता अर्थात् जो कार्य अपने लिये किया जाता है वह महान् है और उसमें अहङ्कार नहीं होता। अहङ्कार के अभाव से ही मनुष्य महान् कहलाता है। महात्मा गाँधी, महर्षि दयानन्द, शङ्कराचार्य आदि महान् पुरुष कहलाये, क्योंकि उनके अन्दर अहङ्कार न था। श्री बिड़ला जी इस समय बड़े दानी हैं परन्तु वे महापुरुष नहीं कहलाते। जिसका उपकार अहङ्कार रहित है, वह महान् कहलाता है। यज्ञ कितनी उत्तम वस्तु हुई। अल्प सी मात्रा देकर परमेश्वर से हम पांच वस्तुओं के अधिकारी बन जाते हैं। कौन ऐसा मनुष्य है जिसको यह आवश्यकता नहीं? परन्तु हम करते नहीं। प्रतिदिन श्रद्धा से दें, भावना से दें तो हमारा कार्य सिद्ध हो जावेगा। कोई विरला निकलेगा जो हवन करता हो।

पर परमेश्वर पर हमें विश्वास नहीं। जब तक विश्वास न हो प्रेम नहीं हो सकता। जितना विश्वास बढ़ेगा उतना प्रेम बढ़ेगा। परमेश्वर से हमारा प्रेम नहीं, क्योंकि उस पर विश्वास नहीं आदमी पर विश्वास है।

जब दांत न थे तब दूध दियो।
जब दांत दिये तब अन्न न दई हैं ?

यह कभी हो सकता है ? उस प्रभु की दयाक ा कोई अन्त नहीं। माता के मटके प्रसव से पूर्व ही दूध से भर देता है, यदि बालक के लिये दूध मोल लेना पड़ता तो निर्धन कङ्गाल स्त्रियों के लिये पालना कितनी कठिन होती ! यह प्रभु की अपार दया है। ऐसा जानते हुए भी हम उस पर विश्वास नहीं करते। कारण यह है कि जो शक्ति परमात्मा ने हमे दी. हम उसका अनुभव नहीं करते।

प्रभु का दान—

शक्ति, प्रेम, विश्वास तीन चाजें प्रभु ने दीं। हमारी शक्ति शून्य है। नवजात बालक की दोनों मुट्ठियां बन्द होती हैं, क्यों ? माता मुट्ठी सीधा करना चाहती है, वह रोता है। क्यों ? मुट्ठी तब बन्द करते हैं जब अमूल्य वस्तु पास हो, वह छिपा लेता है, किसी को देना नहीं चाहता। मुट्ठी बड़ी मजबूत होती है। बालक के पास कोई वस्तु थी जिसे वह देना नहीं चाहता और अपने पास रखना चाहता है। यह शक्ति उसके पास थी। यदि मनुष्य इस शक्ति को जाने तो उसका प्रभु पर विश्वास हो जाय। बालक की एक मुट्ठी में परमात्मा है और एक में प्रकृति। इसलिये कि वह योगी है। बालक को कड़ी दृष्टि से न देखो, मांसाहारी, जुआरी, डाकू, व्यभिचारी की छाया उस पर न पड़े। योगी को दूसरा जन्म याद होता है। बालक को भी याद होता है। बालक का तालु टप-टप करता है। अंगूठा चूसता है, अंगूठे के चूसने से सलीवा (अमृत) टपकता है, जब तक टपकता है पूर्ण योगी है और बेखबर योगी है। बालक के सामने क्रीड़ा भी न करो। योग के अन्दर अहिंसा का फल है कि बैरी का बैर भी त्याग हो जाता है। बालक के सामने सर्प भी बैर त्याग देता है। बच्चों की मुस्कान परायों को भी हर लेती है। योग की चार निशानियां (चिह्न) हैं।

१. योग में प्रवेश करने पर समता आती है। बच्चों में समता होती हैं, हिन्दू मुस्लिम का कोई भेद नहीं उठले। २ शांति, ३. सुख और ४. हास्य मुस्कान, जो सब के शोक चिन्ता को दूर कर देता है। वह योगी है वह (बालक) राग और द्वेष से शून्य है। परमेश्वर भी उसको प्राप्त हुआ जो राग और द्वेष से रहित है और प्रकृति भी उसके अधिकार में आई जो राग द्वेष से रहित हुआ। इसका नाम है शक्ति, निष्पाप होना, राग द्वेष रहित होना। यह शक्ति मनुष्य में बहुत नीचे रहती है। सिर में रहता है अमृत। ज्यों २ संसार की हवा लगी, माता के विचार उसके अन्दर गये, बालक की शक्ति का ह्रास होने लगा। दूध पिला रही है और कुढ़ भी रही है, मानो बालक में विष प्रविष्ट करा रही है, वह शक्ति, जो अमृत थी, ऊपर से नीचे दौड़ आई और गुदा के भीतर जहां सेन है, उसमें प्रविष्ट हो गई, दब गई। उस कुण्डलिनी शक्ति को जगाने के लिये योगी योग करता है। यह जग जाय तो बस बेड़ा पार है। परमेश्वर ने पूर्ण साधन दिये कि वह उसके साथ हो जाय। प्रभु ने कान, आंख, मन, बुद्धि वाणी दी, कि इनकी सहायता से एकता प्राप्त कर सके। इसके लिए जरूरत पड़ी प्राणायाम की।

यजुर्वेद, अध्याय १३, मं० ५५ के भावार्थ में महर्षि दयानन्द ने लिखा कि स्त्री-पुरुषों को चाहिये कि प्राण का मन और मन का प्राण नियम करने वाला है ऐसा जान के प्राणयाम से आत्मा को शुद्ध करते हुए पुरुषों से सम्पूर्ण सृष्टि के पदार्थों का विज्ञान स्वीकार करें।

तो आत्मा की शुद्धि के लिये ही प्राणायाम किया जाता है। रावण ने वायु आदि भौतिक देवताओं को वश में किया परन्तु प्राणों पर अधिकार प्राप्त न कर सका। भीष्म पितामह ने प्राणों पर इतना अधिकार प्राप्त किया हुआ था कि शरशय्या पर पड़े हुये भी मृत्यु को अपने समीप न फटकने दिया। जब उत्तरायण काल आया तो अपनी इच्छा से प्राण त्यागे।

मनु महाराज ने कहा है कि प्राणायाम से बल पैदा होता है जो सर्व वासनाओं को दग्ध कर देता है और वह शक्ति जाग कर ब्रह्मरन्ध्र में पहुँचती है। जो प्राण वायु मनुष्य लेता है, यदि वह सारा बाहर निकाल दे तो मनुष्य का जीवन भी समाप्त हो जाय। इससे स्पष्ट है कि कुछ न कुछ प्राण अन्दर रह जाता है, वह स्वाभाविक कुम्भक है। यह परमात्मा

द्वारा प्राणायाम है, सङ्कल्प तथा इच्छा से नहीं। मनुष्य सङ्कल्प द्वारा कुम्भक करे।

इञ्जन सहस्रों मन भार उठाता है। भाप को बन्द कर दिया जाता है, कुम्भक करते हैं तब रेल चलती है। साईकिल का पहिया, मोटर का पहिया तब चलता है जब उसके अन्दर वायु का कुम्भक किया जाता है। तनिक मात्र वायु निकल जाने पर, मोटर साईकिल नहीं चल सकती। प्राणायाम करेंगे, तो उस से बल आकर हमें चलने की शक्ति आयेगी। वायु अन्दर भरने से वायु के गुण, धर्म, कर्म, स्वभाव अपने अन्दर आते हैं। वायु का गुण है स्पर्श। भूत मात्र को, जड़ तक को भी, मुझ को भी स्पर्श करेगी। यदि जड़ दीवार को वायु न मिले तो गिर जायेगी। जो मकान अन्दर बन्द रहता वह शीघ्र ही गिर जाता है।

वायु का स्वभाव है सम रहना। हमारे अन्दर आयेगी समता। जो बालक के अन्दर थी वह हमारे अन्दर आयेगी। यह प्राणायाम का फल है लाख यत्न करे कि सम हो जाऊं नहीं हो सकता जब तक प्राणायाम न करे। जल में, पृथ्वी में, समानता नहीं, समानता केवल वायु में है। वायु को एक प्रकार से सब नमस्कार करते हैं। जब चलती है, वृक्ष झुक जाते हैं। पवन गुरु हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि को भोले मनुष्य नमस्कार करते हैं।

वायु का कर्म है निरन्तर चलते रहना। सूर्य, जल, पृथ्वी, अग्नि निरन्तर उपकार करते हैं। प्राण वायु सदा चलती रहती और जीवन प्रदान करती है। एक क्षण भी हम से पृथक् नहीं होती हिलाने से तुरन्त आजाती है। प्राणायाम करने वाले का जीवन संसार के लिए ही हो जाता है। प्राणायाम प्रभु की देन है। वेद ने स्वयं कहा "अयं दक्षिण: विश्वकर्मा —य० १३-५५ स्त्री-पुरुषों को चाहिये कि प्राणायाम द्वारा आत्मा को शुद्ध करें। २१ दिन विधिपूर्वक प्राणायाम कर लेने पर बुद्धि बड़ी सूक्ष्म हो जाती है। तीन से आरम्भ करके धीरे-धीरे ८० तक चला जाय। बुद्धि से आवरण दूर हो जाता है। करोगे फल पावोगे।

मनुष्य जीवन की सफलता जन्म, औषधि, मन्त्र, जप, समाधि से हो जाती है।

कइयों को जन्म से ही सिद्धि प्राप्त हो जाती है, पूर्व जन्म के कर्म-फल के कारण वैराग्य जन्म से हो गया।

ओषधि द्वारा भी सिद्धि प्राप्त हो सकती है, ओषधि कई प्रकार की हैं। हिमालय में रहने वाले योगी एक चिता बना देते हैं और ओषधि घोट कर, जिसे सोम अथवा कोई नाम दें, शिष्य के शरीर पर मल देते हैं और जलती चिता में बिठा देते हैं। जब वह ओषधि नितान्त शुष्क हो जाती है, उसको निकाल देते हैं।

मन्त्र द्वारा भी सिद्धि प्राप्त होती है। गायत्री मन्त्र के विधि सहित जप से सफलता प्राप्त हो जाती है।

तप द्वारा भी वही कार्य सिद्ध हो सकता है। महात्मा गांधी ने तप द्वारा सिद्धि प्राप्त की। पाँचवा साधन है समाधि।

वेद कहता है, गायत्री वेद का प्राण है। यह वसन्त ऋतु है। वसन्त का यह काम है। शरद् ऋतु में धनी लोग घरों के अन्दर बन्द रहते हैं, वस्त्रों का भार कन्धे पर उठाते हैं, वसन्त के आने पर घरों से बाहर निकल आते और वस्त्रों के भार से मुक्त होकर स्वतन्त्रता पूर्वक बाहर विचरते हैं। वसन्त बहार है, मन को तरोताजा करता है, आंखों को ठण्डक देता है। गायत्री का भी यही फल है इससे मनुष्य आवागमन के चक्कर से छूट जाता है और परमेश्वर को प्राप्त करता है।

पांच भूलें—

अमीषां चित्तानि प्रति मोहयन्ती गृहाणांगान्यप्वे परेहि।
अभि पैहि निर्दह हृत्सु शौकैर्ग्रह्यामित्रांस्तमसा विध्यशत्रून्
अ० ३—२—५

इस मन्त्र में पाप वृत्ति को सम्बोधन करके कहा गया है कि (अप्वे परा इहि) हे व्याधि और भय! पापवृत्ते! हमारे यहां से चली जा। (अमीषां चित्तानि प्रतिमोहयन्ती) इन शत्रुओं के चित्तों को मोहित करती हुई (अङ्गानि गृहाण) उनके शरीरों को जा पकड़ अर्थात् हमें मूढ़ न बना और हमारे शत्रुओं के शरीरों को विमोहित कर दे और

उनको (शोकैः निर्दह) शोक से भस्म कर डाल। (ग्राह्य तमसा शत्रून् विध्य) निरुद्यम वृत्ति से और अन्धकार से शत्रुओं को वध डाल, विनाश कर दे।

मनुष्य पाप से डरता है और इसलिए उस से छुटकारा चाहता है।

मनुष्य पाप से क्यों डरता है, उस के शत्रु कौन से हैं जिनका यह विनाश चाहता है और उसके साधन क्या हैं यह देखना है।

मनुष्य और पशु-संसार को देखने में बड़ा भेद प्रतीत होता है। एक वे पशु-पक्षी हैं जो परतन्त्र हैं, एक वे जड़ पदार्थ हैं जो यन्त्रवत् हैं जैसे सूर्य आदि जो उस देव के नियमों का पालन करते हैं और एक वे जीव हैं जो मुक्त स्वतन्त्र हैं स्वेछाचारी हैं। परन्तु मनुष्य को क्या कहें। यह बात ध्यान देने योग्य है कि मनुष्य के अन्दर जो आत्मा है वह एक विशेष आत्मा है। पशु का बच्चा पैदा होते ही एक घन्टे बाद फुदकने और कूदने लग जाता है। भैंस का बच्चा और कुतिया का पिल्ला जल में तैरने लग जाता है, स्वयं जाकर माता के स्तनों से चिपट जाता और अपनी क्षुधा को निवृत्ति करता है। परन्तु मनुष्य का बच्चा पैदा होते ही निस्सहाय और परतन्त्रता के पाश से ग्रस्त होता है। यह तो जन्म से हर एक बात में शिक्षा और सहायता का मोहताज है। पशु के बच्चे को शिक्षा देने की आवश्यकता नहीं। वह भक्ष्याभक्ष्य से अभिज्ञ है, शत्रु और मित्र में पहिचान कर सकता है, शत्रु से कभी मित्रता नहीं गांठता परन्तु मनुष्य का बच्चा ऐसा नहीं कर सकता। बच्चा पैदा हो, उसकी झिल्ली दूर की जावे, साफ स्वच्छ करके बच्चे को जहाँ लिटा दिया जाय पड़ा रहेगा, भूख लग रही हो, रोवेगा पर दौड़कर माता के स्तनों को नहीं चिपटेगा और छाती पर पड़ा हुआ भी स्तनों को नहीं पकड़ सकता। जब तक कि माता स्वयं कृपा और दया से द्रवित हो कर उसे स्तनों से न लगाये। बच्चे को बिठाना चलना फिरना, कूदना आदि हर प्रकार की शिक्षा देनी पड़ती है। इस शिक्षा के होते हुए भी विरले मनुष्य ही मनुष्य बनते हैं। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि पशु तो जन्म से पशु पैदा होता है, मरण पर्यन्त पशु रहता है और पशु का काम करता है। परन्तु इस सृष्टि को उत्पन्न हुए १,९७,४९,२९,०५३ वर्ष बीत गये, मान लो कि एक जन्म में एक सौ वर्ष आयु बीती तो गोया २ कोटि जन्म मिलने पर भी हम अभी मुक्त नहीं हुए और न इससे

पूर्व सृष्टि में मुक्त हुए। हमारी उन्नति तो यह हुई कि हम मनुष्य भी न बन सके, नहीं तो वेद हमें न कहता 'मनुर्भव' 'मनुष्य बन।' बनना तो हमें देवता था पर हम मनुष्य ही न रह सके। यह अवनति क्यों हुई? विचार करने से पता चलेगा कि यद्यपि प्रभु ने अपार कृपा करके हमें एक विशेष जन्म दिया और हमें सब योनियों से, जिनकी संख्या ८४ लाख बताई जाती है, श्रेष्ठ बनाया और श्रेष्ठता का साधन दिया बुद्धि। परन्तु हमने अपनी बुद्धि का विकास न किया और भूल पर भूल करते गये। जैसा कि ऊपर कह चुके हैं कि पशु अपने शत्रु से मित्रता नहीं करता पर एक मनुष्य ही है जो अपने शत्रुओं से मित्रता करता है और उनकी मित्रता में वास्तविक बात को भूल जाता है। परमात्मा ने इस वेद मन्त्र में आदेश कर दिया कि ऐ मनुष्य! पाप वृत्ति से दूर रह और साधन भी बता दिया। हमने आचरण न किया इसमें परमात्मा का क्या दोष है?

गर न बीनद बरोज शपराए चश्म
चश्माए आफताब रा चि गुनाह।

फारसी के कवि ने कहा, जिसका तात्पर्य यह है कि प्रभु ने सूर्य बना दिया कि संसार भर को प्रकाश दे, सूर्य तो प्रकाश करता है यदि चिमगादड़ आंखें मूंद कर दिन के प्रकाश को न देखे तो इसमें सूर्य का क्या दोष है?

मनुष्य अल्पज्ञ है, भूल तो उसने करनी है, अंग्रेजी में कहा है—'To err is human' भूल करना मनुष्य का स्वभाव है। भूल सात्विक, राजसिक और तामसिक तीनों वृत्तियों वाला करता है। सात्विक वृत्ति वाला भलता है संसार की विषय वासनाओं को, और भूलता है अपनी की हुई नेकी को और दूसरों की की हुई बुराई को राजसिक बुद्धि वाला भूलता है अपने मित्रसम्बन्धियों को जब यह निर्धन बन जाते हैं और तामसिक वृत्ति वाला भूलता है भगवान को धर्म और श्रेष्ठ कर्म को। परन्तु बड़ी भलें जो सर्वसाधारण में एक जैसे पाई जाती है वे पाँच हैं।

१—कि हम मौत (मृत्यु) को भूल गये कामवश।
२—किये हुए पापों को भूल गये लोभ से।
३—अपने जन्म के अन्दर भोगे हुए दुःखों को भूल गये मोह से।

४—ईश्वर की दया और न्याय को भूल गये अहङ्कार से।

५—सुख सम्पति जो हमें मिली उस के साधन, को भूल गये क्रोध से।

मेरा यह विश्वास है कि यदि मनुष्य अपने अन्दर से यह भूलें निकाल दे तो बस वह देवता है और ईश्वर प्राप्ति उसके लिये सुगम है अतः क्रमशः एक २ भूल का तनिक विचार करते हैं:—

शास्त्रकारों ने कहा है "हेयं दुःखमनागतम्" आने वाले दुःख का प्रतिकार करो। जो दुःख बीत गया वह गया, जो बीत रहा है वह चला जायगा। जो अभी नहीं आया उसका विचार और चिकित्सा करो। आने वाला दुःख तो मृत्यु है जो पुनः हमें जन्म देता है। आवागमन का चक्र दुःख ही तो है। हम मृत्यु को भूल गये।

महाभारत में एक कथा आती है कि युधिष्ठिर को जंगल में प्यास लगी तो उसने भीमसेन से कहा कि भ्राता कहीं से जल लाओ। भीम ने वृक्ष पर चढ़ कर देखा तो एक स्थान पर हरे २ घने वृक्षों का समूह प्रतीत हुआ उस ओर चल दिया। एक ताल था, ताल से जल लेने लगा तो यक्ष ने ललकारा कि भीमसेन! सचेत! यदि जल लेना है तो मेरे प्रश्नों का पहले उत्तर दो, उत्तर सन्तोषजनक होने पर जल पी सकते हो। यदि बलात्कार करोगे तो मूर्छित कर दिये जाओगे। भीम बली था, अपने बल के आगे उसे किसी की परवाह न थी, इस चेतावनी की उपेक्षा कर के बलात्कार से जल लेने लगा तो मूर्छित हो कर गिर पड़ा। एक २ भाई बारी २ उस तालाब पर आया और भीम की सी अवस्था को प्राप्त हुआ। सब से अन्त में युधिष्ठिर आया, युधिष्ठिर ने देखा चारों भाई मूर्छित पड़े हैं चकित हो गया, प्यास बुझाने आगे बढ़ा तो यक्ष की आवाज को सुना, धर्मात्मा था मन में विचार किया कि यक्ष की सम्पत्ति का उपयोग उसकी आज्ञा बिना नहीं हो सकता तो कहा कि महाराज! फरमाइये क्या प्रश्न है? तो यक्ष ने बहुत प्रश्नों में से एक यह पूछा "किम् आश्चर्य्यम्"— आश्चर्य क्या है? तो युधिष्ठिर ने उत्तर दिया।

अहन्यहनि भूतानि गच्छन्ति यम मन्दिरं।
अपरे स्थातुमिच्छन्ति, किमाश्चर्य्यमतःपरम्॥

अर्थात् हम प्रति दिन देखते हैं कि मरे हुए प्राणी यमालय में जाते हैं और शेष स्थिर रहने की इच्छा करते हैं, इससे बढ़ कर और क्या आश्चर्य है?

भक्त कबीर ने कहा:—

इस बिन्से इक स्थिर माने ।
अचरज सखियो न जाई ।।
साधो रचना राम रचाई ।

अर्थात् प्रभु की यह सृष्टि विचित्र है, हम देखते हैं एक मर जाता है, दूसरा समझता है मैंने तो सदा के लिए यहाँ रहना है कितना आश्चर्य है ?

भगवान् वेद ने तो बड़े सुन्दर शब्दों में चेतावनी रूप में मानव जीवन का सार तथा उसको सफल बनाने के साधनों का वर्णन किया है ।

अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता ।
गोभाजऽइत् किलासथ यत्सनवथ पूरुषम् ।। यजु० १२—७९ ।।

हे मनुष्य ! ओषधियों के समान (यत्) जिस (वः) तुम्हारा (अश्वत्थे) कल रहे वा न रहे ऐसे शरीर में (निषदनम्) निवास है । और (वः) तुम्हारा (पर्णे) कमल के पत्ते पर जल के समान चलायमान संसार में ईश्वर ने (वसतिः) निवास (कृता) किया है इससे (गोभाजः) पृथिवी को सेवन करते हुए (किल) ही (पुरुषम्) अन्न आदि से देह वाले पुरुष को (सनवथ) औषधि देकर सेवन करो और सुख को प्राप्त होते हुए [इत्] संसार में [असथ] रहो ।।

भावार्थः—मनुष्यों को ऐसा विचारना चाहिए कि हमारा शरीर अनित्य अस्थिर चलायमान है इससे शरीर को रोगों से बचाकर धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष का अनुष्ठान शीघ्र करके अनित्य साधनों से नित्य मोक्ष के सुख को प्राप्त होवें । जैसे औषधि और तृण आदि फलफूल पत्ते स्कंध और शाखा आदि से शोभित होते हैं वैसे ही रोग रहित शरीरों से शोभायमान हों ।

इस उदाहरण का भाव केवल यह है कि मनुष्य मृत्यु को भूल गया है । मृत्यु को भूल जाने का कारण कामदेव है, जो हमारा बड़ा शत्रु है । एक धनी सेठ का नवयुवक बालक मर गया । अब जिस सेठ का सिर किसी के आगे नहीं झुकता आज शोक की अवस्था में सब के सामने झुक जाता है । स्त्री-पुरुष दोनों रोते-चिल्लाते हैं, सिर में खाक रमा रक्खी है । खाना-पीना अच्छा नहीं लगता । कार्य व्यवहार भी छूट जाता है, परन्तु अभी एक

वर्ष ही बीता कि पुत्रोत्पत्ति की बधाई मिलती है, यह पुत्र कहां से आ गया यदि मृत्यु याद होती तो एक पुत्र का शोक देख चुका था, स्त्री का सङ्ग न करता, परन्तु नहीं, कामदेव ने मृत्यु को भुलवा दिया, वह सब कामदेव की कृपा है। जिसने काम को अपना शत्रु समझा और शत्रु से दूर रहा तो वह मृत्यु के पन्जे से बच गया। निस्सन्देह आवागमन का मूल कारण दूसरी भूल किये हुवे पापों को भूल जाना है। पापों को भुला देने का कारण लोभ देवता है। हम देखते हैं कि एक व्यक्ति ब्लैक करता है, पकड़ा जाता है, दण्ड पाकर छूट जाने पर भी बाज गहीं आता, वही काम करता है। इसी प्रकार चोर चोरी का दण्ड भुगत करके लोभ वश चोरी से नहीं रहता।

उदाहरण—

एक दरजी बड़ा कारीगर था। हर प्रकार के वस्त्र तैयार करता था, बड़ा अच्छा काम चला हुआ था। दैवयोग से रोग ग्रस्त हो गया। रोग बढ़ता भी गया, क्लेश भी बढ़ता गया, दुःखी हुआ। एक दिन दरजी को बीमारी में स्वप्न आया, स्वप्न में क्या देखा कि एक बड़ा ऊंचा झण्डा है और उस पर सर्व प्रकार के टुकड़े रंग बिरंगे लगे हुवे हैं। बड़ा भयभीत हुआ और परमात्मा से रुदन करके प्रार्थना करने लगा कि भगवान्! इस बार अवश्य कृपा करके स्वस्थ कर दो यह पाप न करूँगा। परमात्मा ने यही प्रार्थना स्वीकार कर ली। स्वस्थ हो गया और दुकान पर जब आया तो शिष्यों से कह दिया कि किसी के वस्त्रों को न चुराया करो और जब वह (दरजी) भी ऐसा काम करने लगे तो उसे याद दिला दें। कुछ दिनों तक यही रीति प्रचलित रही। एक दिन किसी व्यक्ति ने किमखाब का एक बहुमूल्य वस्त्र सिलवाने के लिए दिया। वस्त्र जहाँ मूल्यवान था वहां रूपवान् भी था, दरजी के मन में लोभ आगया कि इस कोट से बच्चे की एक बास्कट (बण्डी) भी तैयार हो सकती है, वस्त्र को कैंची उठा कर टेढ़ा काटना चाहा कि शिष्य ने स्मरण करा दिया, रख दिया कि कल काटेंगे। दूसरे दिन भी वैसे ही हुआ। तीसरे दिन शिष्य की अनुपस्थिति में लोभ देवता ने याद दिलाया कि अब समय है, वस्त्र उठाया। आंखों के सामने वह ध्वजा भी प्रतीत हुई जिस पर पहले पाप की काटें लगी हुई थीं पर लोभ प्रबल था, वस्त्र को इच्छानुसार यह कहते हुवे काट ही लिया कि "**ईं हम बर अलम्**"

अर्थात् यह भी उस ध्वजा पर जहां पर सहस्रों पाप किये हैं, वहां

पर एक यह भी।

तीसरी भूल है—अपने जन्म के अन्दर भोगे हुवे दुःखों को भूल गये। इसका मूल कारण है मोह। इसका प्रमाण शरणार्थी हैं। पश्चिमी पंजाब में जब मारधाड़ हुई तो प्रत्येक व्यक्ति ऐसी आपत्ति में प्रभु को स्मरण कर रहा था और प्रार्थना कर रहा था कि भगवान् ! धन सम्पत्ति आदि सब कुछ ले लो। इन तीन ही वस्त्रों में सुरक्षित भारत में पहुँचा दो उस समय पुत्र परिवार नौकर चाकर पशु माया की कुछ चिन्ता न थी, एक शरीर के साथ मोह था और इसके लिए भगवान् के दरबार में सच्चे दिल से पुकार थी, प्रभु नें सुनी परन्तु जब भारत पहुंचे तो सब भोगे हुवे दुःखो को भूल गये और अपनी उदरपूर्ति के लिए माया संग्रह में इतने ग्रस्त होते गए कि ईश्वर को भी भुला दिया और मोह से मित्रता कर ली।

चौथी भूल है कि परमेश्वर की दया और न्याय को भूल गये। वैज्ञानिक तत्ववेत्ता कहते हैं कि मनुष्य चौबीस घन्टे में २१६०० श्वास लेता है यदि परमेश्वर केवल मनुष्य जन्म ही देता और श्वास न देता तो हम क्या करते अथवा यदि श्वास का एक पैसा देना पड़ता सौ श्वास के एक रुपया नौ आनें देने पड़ते सहस्र के पन्द्रह रुपये दस आने। २१६०० के लगभग ३३७॥) रु० देना पड़ता, सेठ बिरला जैसे धनी भी शीघ्र असमर्थता प्रकट करते, और फिर जिसके परिवार में आठ दस व्यक्ति हों वह बेचारा कैसे हजारों का बिल अदा करता ? एक पाई मूल्य होता तो लगभग ११२ रु० प्रतिदिन देना पड़ता। एक कौड़ी प्रति श्वास दाम होता तो साढ़े तीन रुपया प्रतिदिन का बिल होता। परन्तु यह प्रभु की दया है कि दाम कुछ नहीं लेता और फिर दूसरी दया यह कि हम श्वास अपने अन्दर लेते और निकालते हैं यह काम बिना किसी इच्छा के होता है। यदि हमें श्वास लेने के लिए इच्छा करनी पड़ती तो हम सारा दिन यूं ही करते रहते। श्वास आने जाने के लिए नासिका बना दी। कान का काम सुनना, आंख का देखना, वाणी का बोलना और चखना, त्वचा का स्पर्श नियत कर दिया। एक इन्द्रिय से दूसरी इन्द्रिय का काम नहीं हो सकता जिस इन्द्रिय का दुरुपयोग करें वह इन्द्रिय छीन लेगा। आंख से बुरा देखेंगे तो अगले जन्म में अन्धे पैदा होंगे। इस प्रकार शेष इन्द्रियों का समझ लीजिए यह उसका न्याय है।

हम भोजन खाते हैं पेट में जाकर उसका रस, रक्त, मांस, अस्थि, मज्जा, वीर्य बनता और केश, अनायास बाहर निकलते हैं। हमें इनके लिए कुछ भी प्रयत्न अहीं करना पड़ता। यदि हमें अपने भोजन को रस आदि में परिवर्तित करने के लिए भट्टी तपानी पड़ती तो न जाने क्या दुर्दशा हमारी होती ? हम सो रहे हों, श्वास आ जा रहा है, भोजन का रस आदि में परिवर्तन होकर शरीर बन रहा है।

इस दया और न्याय को भुलाने का मूल कारण अहंकार हैं। अहंकार में आकर मनुष्य किसी के उपकार को नहीं मानता।

पांचवीं भूल है सुख सम्पत्ति आदि के साधन का कारण भूल गये। इस भूल का मूल कारण क्रोध है। बच्चा अभी गर्भ से बाहर नहीं आता कि माता के स्तनों में दूध आ जाता है। गर्भ से बाहर आने पर मटके भरे तैयार हैं। भोग उपस्थित है। यदि दूध मोल लेकर बच्चे का पालन किया जाता तो निर्धन से बढ़कर और कौन दुःखी होगा ? परन्तु नहीं, प्रभु ने बच्चे के साधन माता को अनायास दे दिये। अन्न खाय, फल खाय, उसका दूध रूप में रस बन जाता है। और जब भूखा हो, मटके खोल दें। ज्ञान इन्द्रियां हमें दीं। हम इन बातों को समझें, उपकारी का उपकार मानें परन्तु हमने ज्ञान इन्द्रियों का दुरुपयोग किया। उपकार करने वाले से भी द्वेष करने लगे। द्वेष तब बढ़ता है जब क्रोध आता है। क्रोध से द्वेष वृत्ति जागती है, दूसरे के गुण और समृद्धि को देखकर मनुष्य जल जाता है, ईर्ष्या करता है यह नहीं सोचता कि वह किस कर्म से बढ़ा है और दूसरे के अवगुण को देखकर उससे घृणा करता है, इसलिए इस क्रोध के कारण से सम्पत्ति को भूल जाता है।

हमने देखा कि काम, लोभ, मोह, अहंकार और क्रोध वास्तव में हमारे शत्रु हैं और हमने इनके साथ मित्रता कर रक्खी है मान सुखों की लुटिया स्वयं अपने हाथों से डुबो दी है और कष्ट पर कष्ट उठा रहे हैं।

प्रभु करें कि हमें बुद्धि आए कि हम इन भूलों को समझें और शत्रुओं से मित्रता न करके पाप से मुक्त हो जायें। यही वेद मन्त्र का आशय है।

प्रभु की भक्ति ही आत्मा की शक्ति और सम्पत्ति है

(संस्कार विधि के प्रथम तीन मन्त्रों के आधार पर)

शरीर की रचना—हमारे शरीर के अन्दर पृथिवी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश पांचों भूत हैं परन्तु अल्प मात्रा में। जल संसार में बहुत है शरीर में उतना नहीं। यही हाल भूतों का है। अपितु शरीर का ऐसा कोई भाग नहीं कि जिसमें ये पाँचों भूत विद्यमान न हों। प्रभु की लीला अद्भुत है इतने बड़े तत्वों को अल्पमात्र मेरे शरीर में भर दिया। इतना होते हुए मेरे अन्दर एक और शक्ति है जो सर्वतः परिपूर्ण है, पांवों से शिखा तक, रोम रोम के भीतर परमेश्वर परिपूर्ण रुप से व्यापक है। परमेश्वर अंशमात्र में नहीं भूत तो अंशमात्र में है। यह जल, अग्नि, आदि अपने सभी गुणों को नहीं रखते। जल का गुण है शान्त, मेरे अन्दर जल मुझे शान्त नहीं कर रहा। मुझे ठण्डक के लिए और जल लेना पड़ता है। अग्नि अन्दर है परन्तु वह प्रकाश का गुण अन्दर नहीं है। वायु अन्दर है, परन्तु सारे गुणों के साथ नहीं। यदि वायु के सारे गुण अन्दर होते तो मुझे बाहर की वायु लेने की आवश्यकता न पड़ती। दूसरी अद्भुत लीला यह है कि अग्नि जल, पृथिवी, वायु का अंशमात्र हमारे भीतर रक्खा। अग्नि किञ्चन्मात्र शरीर को छू जाय, तो अनुभव करता हूं कि जल गया। जल की बिन्दु पड़ जाय तो तुरन्त वह उठता हू, वर्षा आ गई। परन्तु,

आश्चर्य की बात है कि वह भगवान् जो परिपूर्ण रुप से अपनी शक्तियों सहित मेरे भीतर विद्यमान है, उसका मुझे भान ही नहीं होता। पूजा करता हूं, तप करता हूं, यज्ञ करता हूं, सन्ध्या करता हूं तो भी भान नहीं होता। जल की बिन्दु तो अनुभव करा देती है, प्रभु का भान नहीं होता। कारण ?

इस रहस्य को समझने के लिये यह जीवन मानव देह में आया। महर्षि दयानन्द ने लिखा, "सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सब का आदिमूल परमेश्वर है।" यदि इस तत्व अथवा तथ्य के अन्दर मैंने परमेश्वर को नहीं डाला, तो मेरी विद्या व्यर्थ है। जब मैंने परमेश्वर की विद्याओं को प्राप्त कर लिया और व्यर्थ कर दिया तो मेरा जीवन व्यर्थ गया। यदि प्राप्त करके किसी विद्या को सार्थक कर दिया तो सफल हो गया।

एक आवरण—परमेश्वर और मेरे मध्य में एक आवरण है जो हमें नहीं जानने देता। धन का सामर्थ्य नहीं जो इस परदे को हटा सके। बड़े मल्ल योद्धा सैण्डो आदि अपने शारीरिक बल से इस पर्दे को न हटा सके। हिटलर जैसा वीर भी न हटा सका। बड़े २ अभिमानी राजे महाराजे इस परदे को न हटा सके। जिनकी वाणी से संसार भयभीत हो जाता है, वे भी नहीं हटा सके। वह ऐसी चीज नहीं जो कठिन हो। उसका न परिमाण है न भार, परन्तु हम से हटाया नहीं जाता।

इसका कारण—सिनेमा के अन्दर भगवान् राम का पार्ट अदा करने एक व्यक्ति आया। वैसे की वैसी वेशभूषा है। जनता ने देखा और कहा कि आ गये, परन्तु नमस्कार किसी ने नहीं किया। इसलिये अन्दर से आवाज आती है कि यह राम नहीं। परन्तु एक घन्टा पार्ट जो उसने अदा किया तो जनता की अश्रुधाराएं वह निकलनी और रोमाँच हो गया, परन्तु इतना होते हुए भी नमस्कार किसी ने न किया। कारण, वह तो गोविन्द राम था खौंचा बेचने वाला। वह २४ घण्टे राम नहीं रहा इसलिए किसी ने उसको नमस्कार नहीं किया। हमारी पूजा चाहे जप हो, पाठ हो, कोई भी हो, गोविन्द राम के पार्ट की तरह हैं। परन्तु उसके बाद अर्थात् पूजा पाठ की समाप्ति पर वही हमारी मक्कारी, छल, कपट, दुकानदारी सब चलती है, झूठ बोलते हैं। हमने क्या किया, सिनेमा का पार्ट अदा किया। यदि पूजा करते तो जिस प्रकार अग्नि स्पर्श करते ही हमें चौंका देती है, तो परमात्मा के स्पर्श से भी हमें आनन्द प्रतीत होता। तो बस उसका एकमात्र कारण यही है कि उसके अन्दर जो जनता को उपदेश देता था, राम की भक्ति स्वयं न थी इसलिए प्रभाव न पड़ा। उसने सच्चे हृदय से नहीं किया। वह बना राम, उदर पूर्ति के लिये। जिस भाव से उसने किया था वह तो पूर्ण हो गया। यदि सचमुच इस भाव से करता कि मैं राम ही हूं तो उसको लोगों के पास जाने की आवश्यकता ही न थी।

ज्ञान, कर्म, भक्ति का समन्वय—परमेश्वर की लीला अद्भुत है हम समझ नहीं पाते। बाजार में सुन्दर पीला मीठा आम देखा, खरीद लिया। आम का ज्ञान किस ने कराया? छिलके ने। कि यह संतरा नहीं, अनार नहीं, आम है। हम को कैसा प्रिय है। छिलके को उतार कर फेंक दिया। ज्ञान का मूल्य तो इतना ही रहा, जब वह रस जो हम लेना

चाहते थे, लिया तो जिह्वा पर जाते ही भगवान की लीला का गुण गाया कि कितना मीठा रस है ! जिसके आश्रय रस था, वह गुठली भी फेंक दी परन्तु जिसका मूल्य समझा वह अपने अन्दर ले लिया और वह था रस। जिस प्रकार आम में छिलके गुठली और रस के समन्वय होने से आम की कीमत है इसी प्रकार ज्ञान, कर्म और भक्ति के समन्वय से मनुष्य की कीमत है।

वेद आज्ञा— भगवान् ने यजुर्वेद के अन्तिम अध्याय के अन्तिम मंत्र में बतलाया कि "हिरण्यमयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखं"—कि सचाई का अथवा तत्त्व का मुख स्वर्णिम पात्र से ढका हुआ है। स्वर्ण के देख लेने मात्र से सत्य का रस प्रतीत नहीं हो सकता। ढकना तो ज्ञान कराता है। मध्य में भक्ति रस है। गुठली ने कराया कर्म। आम की लकड़ी मूल आदि सब को बेकार समझ त्याग दिया। एक रस था जिसे हमने पी लिया। यह शुभ कर्म है भक्ति को पैदा करने वाला जैसे गुठली आम को पैदा करती है और साथ ही रस। यह रस कब पैदा होगा जिस समय गुठली को भूमि के अन्दर डाल दिया। अर्थात् जिस समय गुठली ने अपने आपको अर्पण कर दिया। कर्म ने माता की शरण में अपने आपको अर्पण कर दिया। गुठली गुठली रह जाती यदि अर्पण न करती। मूल बनी, कोंपल बनी, तना बना, वर्ण, रूप गुण सब को मिटा दिया। पृथ्वी के अर्पित हो गई। सफेद अंगूरी बन गई। कोई वर्ण न रखा, सबको मिटा दिया। वह बढ़ी नाना प्रकार के अंगों में। डण्डी बनी खाकी, पत्ते बने सब्ज, फल लगा, छिल्का पीला, रस लाल लाल फल पका गोल बना। पहले सख्त था, कठोर, रस भी नहीं आया था। जब सूर्य नारायण ने रस का पका दिया, नर्म हो गया। जब पक जाता है तो उसमें नम्रता आ जाती है। जब तक सख्ती और कठोरता है नर्मी नहीं आयेगी। जब मनुष्य रस को चूसेगा, मुख, ओष्ठों, दाढ़ी आदि सब पर रस टपकेगा। वह सारे शरीर को भिगो देगा। जहाँ भी चला जा जाय उसकी गन्ध आयेगी। वस्त्र पर पड़ जाय, दाग लग जायेंगे। भक्ति रस ऐसे ही सब को भिगो देगा।

ऋषि दयानन्द की आदर्श भक्ति—आदर्श भक्त ऋषि दयानन्द ने आठ प्रार्थना मन्त्र वर्तमान क्रम में लिख कर अनन्य भक्ति तथा योग का पूर्ण परिचय दिया है। अतः सर्वप्रथम कहा कि हे सवितः देव ! मेरे समस्त दुर्गुण जो मुझे मानवता से गिराते और आप तक पहुँचने नहीं देते

उनको दूर कर दो और उनके स्थान पर जो भी अच्छे गुण, कर्म, स्वभाव हैं, जिनका मैं नहीं जानता और आप भली प्रकार जानते हैं, प्रदान करो जिसमें मैं पापों से बच जाऊं । साधन लिखा । ईश्वर पर पूर्ण विश्वास होना चाहिये जो हमारी प्रत्येक क्रिया से प्रगट हो । तभी महाराज ने वेद-भाष्य लिखते हुए प्रत्येक अध्याय के आरम्भ में 'विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्र तन्न आसुव' का आश्रय लिया । उस प्रभु से डरते रहे, जितेन्द्रिय, बलवान आत्मा भी सर्वदा प्रभु से भय खाती रही । वेदभाष्य ज्वाला प्रसाद, भीमसेन को लिखा रहे हैं, अड़चन पड़ गई । भगवान के अर्पण कर दिया, समाधिस्थ हो गये । प्रभु से नाता जोड़ प्रकाश प्राप्त किया और समाधि खुलने पर आते ही कहा, 'फाड़ दो' और अब लिखो इसलिये कि कहीं मुझे बल का अभिमान न हो जाय । जिसने राजा की गाड़ी को रोक दिया, जिसका तेज, ओज, विद्या सब कुछ था, उसे भय रहता था कि कहीं अभिमान न आ जाय अतः 'विश्वानि देव' का आश्रय लिया । फिर वाणी से तो मिलता नहीं इसलिये 'हिरण्यगर्भः' का मन्त्र प्रस्तुत करके कहा कि एक ही विश्व जगत् का पति है, उस पर विश्वास करो और सकल उत्तम सामग्री से योगाभ्यास तथा अति प्रेम द्वारा विशेष भक्ति करो । परन्तु हमें तो विश्वास है धन पर, जन पर और बुद्धि पर, परमेश्वर पर तो है नहीं । वह दूर चला गया तो उनके रहने का कोई स्थान नहीं । जब वह पास है तो यह [धन आदि] सब कुछ पास है । जब तक बच्चा दूध पीता है, दांत नहीं, एक माता का ही दूध प्यारा है और उसी का आश्रय है । जब दांत निकलते तो दूध पर सन्तोष न रहा । मां के स्तनों को कटु रस लगाकर दूध को बन्द कर दिया । इसी प्रकार जिस समय भगवान् का भक्त संसार के विषय वासनाओं में लिप्त हो जाता है तो भगवान् अपने दूध को बन्द कर देता है । पृथ्वी आदि को सर्व शक्तिमान ने किस प्रकार बिना सहारे के थामा हुआ है ? यह एक आश्चर्य की बात है। ऐसे आश्चर्यवान अतुल शक्तिशाली सुख स्वरूप भगवान् के लिए 'कस्मै देवाय हविषा विधेम'—भक्ति विशेष किया करें ।

आनन्द कब आता है ?

जब तक भगवान हमें स्पर्श नहीं करेंगे अथवा हम परमात्मा को स्पर्श न करेंगे, आनन्द की प्राप्ति नहीं हो सकेगी ! अतः सचमुच यदि हम उस मधुर रस के अभिलाषी हैं तो भगवान् को योगाभ्यास द्वारा

बुलायें, छुयें। यजुर्वेद के ११, १२ अध्याय में बतलाया कि नाड़ियों के द्वारा वह समाधिस्थ हो सकता है आँख आदि इन्द्रियों से नहीं। यह बाहर की चीजें हैं। भगवान छूएगा, तो नाड़ियों से मल निकल जायगा। फिर कहा कि अति प्रेम से भक्ति विशेष किया करें। लोहे को अग्नि स्पर्श कर रही है, गर्म हो जायगा। परन्तु जब उसको अग्नि के भीतर डाल दिया जाय तो प्रकाश हो जायगा। योगाभ्यास से ज्ञान प्राप्त होगा, परन्तु रस तब तक नहीं आएगा जब तक कि भक्त परमात्मा के अन्दर अपने आपको अर्पण नहीं कर देता।

ज्ञान पहचान के लिए है, भक्ति रस के लिए है, कर्म बढ़ने के लिए है। शुभ कामना—

भगवान करें कि हमारी समझ में आ जाय कि ऋषि दयानन्द ने क्या लिखा। कहा कि 'यस्य छायाऽमृतम्' परमात्मा के आश्रित होना अमृत सुख को प्राप्त करना है और उससे मुख मोड़ना मृत्यु आदि महान् दु:खों का कारण है। जो ईश्वर की भक्ति नहीं करते, वह मृत्यु का अवलम्बन कर रहे हैं। भक्ति के बिना कोई भी मनुष्य ज्ञान और कर्म का रस पान नहीं कर सकता और शक्ति को प्राप्त नहीं कर सकता।

प्रभु भक्ति ही आत्मा की शक्ति और सम्पत्ति है।

प्रभु देव हमें बल तथा बुद्धि प्रदान करें कि हम महर्षि दयानन्द के बताये हुए भक्ति मार्ग पर चल कर जीवन का सुधार संवार कर सकें और संसार के कल्याण में भाग दे सकें। ओ३म् शम्।

मन्यु का स्वरूप

ओ३म् विचेषकृदिन्द्र इवानवब्रवो ऽस्माकं मन्यो अधिपा भवेह।
प्रियं ते नाम सहुरे गृणीमसि विद्मा तमुत्सं यत आबभूथ॥

ऋ० १०-८-५.अ० ४-३-५.

अर्थ—(मन्यो) हे मन्यो! (तं उत्सं विद्म:) हम उस स्रोत को जानते हैं (यत: आबभूथ) जहां से तुम उत्पन्न होते हो। तुम (विजेषकृत्) विजय करने वाले हो और (इन्द्र: इव अनवब्रव:) इन्द्र "आत्मा" की तरह तुम भी कभी न दबायी जा सकने वाली आवाज वाले हो। (इह अस्माकं

अधिपा भव) तुम इस संसार में हमारे अधिष्ठाता पालक होवो। (सहुरे) हे सहनशील ! (ते प्रियं नाम गृणीमसि) हम तेरे प्यारे नाम से तेरी स्तुति करते हैं ॥

व्याख्या

इस मन्त्र में मन्यु का स्वरूप बताया है और उससे सम्बोधन करके प्रार्थना की गई है कि हे मन्यो ! आओ, आप ही हमारे अधिष्ठाता तथा पालक बनो। इस प्रकार के मन्यु का वृत्त तनिक विस्तार से ध्यान देने योग्य है।

मन्यु क्रोध से मिलती-जुलती चीज है परन्तु रूप में थोड़ा-सा भेद है। वह भेद जो आरम्भ में नितान्त अल्प होता है, परिणाम में इतना बढ़ जाता है कि दोनों के अन्दर आकाश और पाताल सा महदन्तर बन जाता है। दोनों मन की दो भिन्न २ अवस्थाओं से पैदा होते हुए भी एक देव कहलाता और दूसरा असुर की निकृष्ट उपाधि से याद किया जाता है।

मन्यु का स्वरूप—मन्यु सब में है। वह प्रसुप्त अवस्था में है। यह बीज मात्र है। जहां विशुद्ध आत्मा निर्मल मन के साथ स्पर्श करता है, वहां मन्यु पैदा होता है। यही उसकी उत्पत्ति का स्थान है, अहंकार और विकारी मन जहां स्पर्श करते है, वहां क्रोध पैदा होता है। मानो क्रोध में मन की विकृत अवस्था का विकृत आत्मा के साथ स्पर्श होता है और मन्यु में मन और आत्मा की निर्मल अवस्था का स्पर्श होता है। दूसरे शब्दों में यों समझिये कि विशुद्ध आत्मा के स्रोत से जो एक इच्छा सी उठती है, जो राग द्वेष से शून्य इच्छा होती है, जो पाप को हटाने के लिये एक शान्त गम्भीर, प्रबल प्रेरणा होती है, वह एक अद्भुत शक्ति होती है और वही मन्यु का स्वरूप है। उस रूप में मन्यु जो चाहता है उसे कोई रोक नहीं सकता।

मन्यु के भाग—मन्यु के तीन भाग हैं। जैसे फल में गुठली, रस और छिल्का। छिल्के से ही सन्तरा, आम आदि की पहचान होती है। छिल्का ऊपर होता है। इसी प्रकार मन्यु जब पैदा होता है, उसका छिल्का रूपी तेज ऊपर आ जाता है। ऐसे ही क्रोध का हाल है। क्रोध भी मुख पर से प्रगट होता है। मन्यु के मुख पर प्रगट होने की अवस्था अथवा तेज का नाम है तामसिक। जैसे अन्धकार में मनुष्य की प्रगति रुक जाती है। इसी प्रकार मन्यु की अवस्था में पापी पाप से रुक जाता है। मन्यु

पापी को वहाँ रोक देता है। क्रोध में भी भीरु डर जाता है। क्रोध निर्बल को परास्त करता हुआ भी, निर्बल हाथ उठाता है अथवा अपशब्द कहता है। यह मन्यु और क्रोध में अन्तर है। मन्यु का बाहर का नाम रुद्र, मध्य का शिव और आन्तरीय नाम महेश है। छिल्का रुद्र है, रस शिव है और गुठली महेश है। छिल्का तामसिक है और गुठली राजसिक है।

दोनों की उत्पत्ति की अवस्थायें—क्रोध तब पैदा होता है जब अहंकार की प्रतिकूलता होती है और मन्यु में आत्मा की प्रतिकूलता होती है अर्थात् क्रोध में अहङ्कार को और मन्यु में आत्मा को आघात पहुँचता है जब मानव के अहम् और मम पर आक्रमण होता है अथवा हानि पहुँचने लगती है तो क्रोध पैदा होता है। जिन २ पदार्थों में मनुष्य का मोह अथवा राग है, उसे क्षति पहुँचने पर क्रोध जागृत होता है, प्रतिकार के लिये, इसलिये क्रोध नीच है, असुर है।

मन्यु अहंकार रहित है। राग द्वेष से रहित निःस्वार्थ है। जब परमेश्वर की प्यारी सृष्टि में किसी के साथ अन्याय होता है तो भक्त के हृदय में मन्यु जागता है।

यजुर्वेद अध्याय १६, मन्त्र १ में "नमस्ते रुद्र मन्यवे" से मन्यु का बाहर रूप रुद्र वर्णन किया गया है, मन्यु भगवान् का बाहु है, आत्मा की बाहु है। तो सब में, जैसे विद्युत् सब में है। बल्ब अग्नि प्रूफ (fire-proof) होती है और शीशे तो अग्नि के ताप से टूट जाते हैं ऐसे ही विकारी मन में क्रोधाग्नि आजाने से वह जल जाता है। परन्तु बल्ब में चाहे लाख कैण्डल की अग्नि का ताप हो, वह नहीं जलता क्योंकि उस में से वायु निकाल कर उसे वायु शून्य किया जाता है, ऐसी ही विशुद्ध नर्मल मन, जिससे समत्व की वायु निकाल कर नितांत ममता रहित किर लिया जाता है, क्रोध की अग्नि से नहीं जलता। उस बल्ब के अन्दर प्लाटीनम को प्रकाशित करने के लिये दो तारों का मेल आवश्यक है और प्रकाश तो उस मध्य से पैदा होता है जहाँ दोनां प्रकाश के विद्युत् अर्थात् प्राण और रयि स्पर्श करती है।

मन्यु की उत्पत्ति राजसिक है। परमात्मा भी राजसिक है परमात्मा सृष्टि करता है। रजोगुण न हो तो न दान हो न पालन हो।

क्रोध और मन्यु में अन्तर

(चित्रपट में)

क्रोध में	मन्यु में
१. बुद्धि मारी जाती है।	१. जोश होश स्थिर रहता है।
२. सहन शक्ति नहीं है।	२. सहुरि है अथात् इस में सहन शक्ति है।

जहाँ सहन है वहाँ क्रोध नहीं। जहां क्रोध है वहां सहन नहीं। जैसे परमात्मा ने हमारे भीतर अग्नि और जल दोनों को इकट्ठा रख दिया है ऐसे ही सहन और मन्यु इकट्ठे हैं।

३. वर्ण बाहर से लाल, भीतर से काला है	३. वर्ण बाहर से लाल, भीतर से सफेद है। जैसे शरीर में थूक सफेद, दांत सफेद और जिह्वा सफेद है। सफेदी वह है जिसमें विकार न हो यह सात्विकता को प्रकट करती है।

मन्यु की प्राप्ति के साधन

मन्यु प्राप्त करने के लिये चार चीजों का होना आवश्यक है —

१. मन्यु की सफेदी अर्थात् विशुद्ध तेज परमात्मा के स्पर्श से आयेगी। जैसे कहा है "अग्नाग्निमिन्धते"— अग्नि से अग्नि प्रकाशित होती है! अतः जो आत्मा परमात्मा के साथ मेल करेगी उसके अन्दर सात्विक तेज आयगा, इसका नाम है भक्ति। अतः मन्यु की उत्पत्ति का सर्वप्रथम सहायक साधन भक्ति है। भक्ति तेज तो पैदा करेगी परन्तु वह मन्यु नहीं कहलायेगा। इस के लिये २. दूसरी मंजिल है ज्ञान। अज्ञानी को भी भक्ति से तेज तो मिलेगा परन्तु उसमे वीर्य नहीं आयेगा। जैसे कहा है— "आत्मानां वीर्य बलम्"— आत्मा का वीर्य बल है यहां वीर्य का भाव ज्ञान है। ज्ञान नही तो कुछ नहीं। अतः ज्ञान दूसरा आवश्यक सहायक साधन है। ३. तीसरी आवश्यक वस्तु है कर्म। ज्ञान सहित भक्ति रस पैदा करेगी और कर्म सहित बढ़ेगी और बढ़ायेगी। कर्म से बल बढ़ता है। बल वह

ह जो बुराई का नाश करने वाला है । बल में दो अक्षर "ब" और "ल" हैं । 'ब' से 'बदी' दुष्टता और 'ल' लय करने वाला अभिप्रेत है । अर्थात् जिस बल से बुराई का नाश नहीं होता, वह बल बल नहीं है । इसलिये मन्यु प्राप्ति के लिए तीसरा आवश्यक सहायक साधन कर्म है । यह तीनों इकट्ठे हो कर भी मन्यु पैदा नहीं कर सकते, अकेले तो क्या करेंगे ? इन तीनों के साथ एक चौथा आवश्यक चीज है । ४. संयम । संयम जब होगा तो फिर मन्यु पैदा होगा । अर्थात् मन्यु पैदा करने के लिये भक्ति, ज्ञान और कर्म तथा संयम चारों का समन्वय होना चाहिये । जब भक्ति, ज्ञान कर्म इन तीनों के साथ संयम शामिल हो जाय तो ओज बन जाता है और वही ओज मन्यु को पैदा करता है ।

ओज क्या है—ओज वह है जो दूसरे की जिह्वा पर ताला लगा दे अर्थात् उसे अवाक् कर दे ।

इस चतुर्थ गुण के कारण मन्यु बाहर के अत्याचार को भस्म कर देता है, परन्तु अन्दर से संयम होने के कारण वह सहुरि है अर्थात् उसके अन्दर सहन शक्ति है । मोटे शब्दों में जोश होश के समन्वय का नाम मन्यु है ।

ओजोऽसि ओजो मयि देहि········वेद ने इन के अन्य नाम तेज, बल तथा ओज बतलाये ।

जब तक मन्यु पैदा नहीं होता, मनुष्य मुक्त नहीं होता है । भक्ति से भी मनुष्य विख्यात हो जाता है, ज्ञान और कर्म से भी, परन्तु यह ख्याति सीमित होती है परन्तु, जब उनके साथ संयम शामिल हो जाता है तो वह अपरिमित हो जाती है । भक्त और ज्ञानी अपने आन्तरिक शत्रुओं काम क्रोध, आदि पर इस मन्यु से ही, जो चार अवस्थाओं के पश्चात् उत्पन्न होता है, विजय प्राप्त करता है ।

प्रभु देव करें कि हमारे अन्दर भक्ति, ज्ञान, कर्म का संयम से मेल होता हुआ मन्यु का उद्भव हो और फिर जन्म मरण के चक्र से छूट कर परमानन्द को प्राप्त करें । ओ३म् शम् ।

———

नाम दान

महे च न त्वाद्रिवः परा शुल्काय दीयसे।
न सहस्राय नायुताय वज्रिवो न शताय शतामघ ॥

(ऋ० ८।१।५॥ साम, पू० प्र० ३।२। द. ५. म० ६)

यह पवित्र मन्त्र सामवेद का है। सामवेद भक्ति रस से भरपूर है। इस मन्त्र पर कुछ विचार से पूर्व शब्दार्थ नीचे देना उचित प्रतीत होता है।

शब्दार्थ — हे (अद्रिवः) हे अन्धकार का हरण करन हारे ज्ञानवान! हे (वज्रिवः) वज्र को धारण करने हारे त्यागी आत्मन्! (महेचन शुल्काय) बड़े भारी मूल्य के बदले भी (न परादीयसे) तुझ को नहीं दिया जा सकता। (शतामघ) हे सैकड़ों ज्ञानकर्मों से सम्पन्न! (न शताय) न सौ के बदले (न सहस्राय) न हजार के बदले (नायुताय) न लाख के बदले तुझे दिया जा सकता है।

भावार्थ को कविता में दर्शाया गया है —

न बेचूं प्रभु का नाम।

तिमिर विनाशक ज्ञानवान वह। ज्योति का है धाम ॥
सौ के बदले, हजार के बदले। लाख मिले चाहे दाम ॥ न बेचूं
अमूल्य रत्न है सबसे प्यारे। ऊंचा उसका धाम ॥
प्रजापति है विश्वम्भर का। कौन चुकावे दाम ॥ न बेचूं
सम्पत् जितनी जग में प्यारे। उसका ही है काम ॥
खेल खिला कर सब रचना को। तब लेता विश्राम ॥ न बेचूं

इस मन्त्र के अन्दर भक्त भगवान से प्रार्थना करता है कि भगवन्, मुझे तेरे नाम की समझ आ जाए और मैं तुझे किसी प्रकार किसी मूल्य पर किसी भी काम के लिए न बेचूं, तेरा त्याग न करूं। न हजार के बदले, न लाख और करोड़ के बदले, न अरब और खरब के बदले और न राज्य और जागीर के बदले तुझे छोड़ूं।

हमारी आयु बढ़ती जा रही है परन्तु ज्ञान प्रतिदिन कम होता जा

रहा है। ऐसी कोई वस्तु है जो हम को ज्ञान नहीं करने देती। सबसे बड़ा ज्ञानदाता गुरु हमारा परमेश्वर है। जिस प्रकार सूर्य हमारी आंख को मार्ग दिखाता और संसार के सभी पदार्थ को प्रकाशित कर देता है, बाह्य तिमिर को मिटा उजाला कर देता है। इसी प्रकार परमात्मा हमारे सर्व प्रकार के अन्धकार का नाश कर के सच्चा वास्तविक ज्ञान का प्रकाश करता है। कितनी बढ़िया से बढ़िया टार्च क्यों न हो, फानूस और बिजली के लैम्प क्यों न हों उनका प्रकाश उतना नहीं हो सकता जितना कि सूर्य देता है। इसी प्रकार संसार के समस्त विद्वान् मिल कर के भी इतना ज्ञान नहीं दे सकते जितना परमेश्वर देता है। परमेश्वर हमारे अन्दर बैठा हुआ है। हम उसकी नहीं सुनते क्योंकि हमने परमेश्वर को बेच दिया है और हमें उसका ध्यान ही नहीं।

दृष्टान्त—मैं बीकानेर में बैठा हुआ था और एक सिन्धी श्रद्धालु भक्त मेरे पास था। मैंने भक्त से पूछा आपका भगवान् के साथ कितना प्यार है। क्या आपको टट्टी से ज्यादा प्यार है ? हंस पड़ा। मैंने कहा एक तरफ आप का ग्राहक आया हो और उसी समय टट्टी का वेग हो जाए तो पहले किसकी सुध लोगे ? निश्चय ही टट्टी जाना पहले पसन्द करोगे। ग्राहक की खबर बाद में लोगे और अगर आप का ग्राहक भी आया हो और सन्ध्या का समय हो तो पहिले परमेश्वर का ध्यान करोगे या ग्राहक का ? सिन्धी भक्त ने कहा सच तो यही है कि पहिले ग्राहक का ध्यान करेंगे। इसलिये तो भक्त ने कहा है कि भगवान् तुझे बेचूं न छोड़ूं न किसी भी कीमत पर। परन्तु हम तो कौड़ियों के बदले इसे बेच देते हैं।

महाराजा रणजीत सिंह का समय था। एक दिन महाराजा रणजीत सिंह प्रातःकाल वायु सेवन को बाहर जा रहे थे। उन्होंने देखा एक कुम्हार गधे पर चढ़ा हुआ ढोला गाता जा रहा है। महाराजा को वह लय बड़ी पसन्द आयी। नाम पूछा। उसने कहा कि मेरा नाम बुद्धू कुम्हार है। महाराजा चला गया। दरबार में जा कर बुद्धू कुम्हार को बुलवाया और कहा कि बुद्ध वही ढोला सुनाओ। उसने कहा मैं नहीं सुना सकता तो महाराज ने कहा तुम्हें ग्राम पुरस्कार में देंगे। परन्तु बुद्धू ने इसे स्वीकार न किया। महाराजा ने यह समझ कर कि शायद एक ग्राम थोड़ा हो उसे और अधिक प्रलोभन दिया कि दो ग्राम ले लो पर ढोला तो सुना दो परन्तु बुद्धू ने अन्ततः यह उत्तर दिया कि मैं ढोला बेचकर अपना और आने वाली सन्तान का नाम मैला नहीं करना चाहता कि बुद्धू ने अमुक

ग्राम ढोला बेचकर लिया। वाह रे बुद्धू ! तेरी अवस्था तो सचमुच वर्तमान काल के असंख्य लोगों से अच्छी थी। आज तो हम कौड़ियों के बदले परमात्मा के नाम को बेच रहे हैं।

इस स्थान पर किसीने प्रश्न किया कि वह कौन सी चीज है जिस के द्वारा हम परमेश्वर को पा सकते हैं ? वह कौन सा गुण है जिसके धारण करने पर वह हमारे सामने आ जाय ? किसी ने उत्तर दिया कि झूठ का त्याग ऐसी चीज है। परन्तु वास्तव में झूठ का न बोलना वीरता नहीं है। वीरता है सत्य बोलने को जो पशु नहीं बोल सकता। यदि हम झूठ बोल दें और सत्य न बोलें तो हम पशु से भी कम हो गए क्योंकि पशु झूठ नहीं बोलता है और सत्य बोल नहीं सकता।

परमेश्वर के त्याग और बेचने का क्या कारण है ?

परमेश्वर का त्याग हम तब कर सकते हैं जब भय आता है और बेचते हैं जब लोभ आ जाता है तो सबसे बड़ी चीज भय और दूसरी लोभ है। जिस व्यक्ति के अन्दर किंचित् मात्र भी भय है...सर्प बिच्छू आदि से भय की बात नहीं...इस बात का भय है कि मेरा मान घट जाय, वह आदमी सत्य को धारण नहीं कर सकता और इसलिये वह ईश्वर को धारण नहीं कर सकता। हमने पांच बार आहुति दी "अनृतात् सत्यमुपैमि" यदि आहुति देने से हमारा सत्य भागता है और अनृत को अपनाते हैं तो हम परमेश्वर से धोखा करते हैं, लोगों से भी, और अपने आपको भी धोखा देते हैं। जब किसी स्त्री को गर्भ हो जाता है तो वह उसकी रक्षा करती है, इसी प्रकार जब मनुष्य गर्भ के समान परमेश्वर की दात की रक्षा करता है तो वह सचमुच गर्भ के समान ही बढेगा, जैसे गर्भ पूर्ण होकर निकलता है, प्रभु की दात भी पूर्ण होकर बाहर आयगी। अतः अब हमें जरा ऊंचा होना चाहिये।

माता का दूध हमने छोड़ दिया जब दांत निकले, माता ने छुड़ा दिया, कहा कि दूध खारा हो गया है। माता ने अंगुली पकड़ कर हमें खड़ा कर दिया कि अब बैठे न रहो, खड़े हो जाओ। इसी प्रकार यदि अपनी जीवन यात्रा में अपने आपको बदलते नहीं तो समझो कि हमारा विनाश हुआ, पतन हुआ, हमारा अभी उत्थान नहीं हुआ, अभी हमें परमेश्वर के नाम की समझ न आई। इसी प्रकार वे लोग जिनको परमेश्वर

की दात बरसी कि वेद पढो, यज्ञ करो, होम करो, जप करो और वह वहीं के वहीं रह गए तो उन का वही हाल रहा, कोल्हू के वृषभ की तरह आगे बढ़े ही नहीं।

ब्रह्मचारी लेता ही लेता है, भोग के लिये नहीं वह ज्ञान के विकास के लिये लेता है, आपके द्वार से पैसा, दूध वस्त्र आदि मांगता है ज्ञान के विकास के लिए। २५ वर्ष पश्चात् गृहस्थी बना। अब देता है और लेता है उसके दो काम हैं। अब वह भोग के लिए देता है और लेता है। वानप्रस्थी बना, अब भी ले और दे तो क्या बना ? अब वह देता ही देता है। वानप्रस्थी अपने कर्म के विकास के लिये देता है। वानप्रस्थी ने धन सम्पत्ति महल बाड़ी, पुत्र परिवार को छोड़ा, यदि फिर भी वह धन के आश्रित रहता है तो उसका क्या बना। उसका काम तो देना ही देना है। संन्यास को पाकर यदि वह कर्म के लिये देता रहे तो वह बिगड़ गया। संन्यासी ने अब सब कुछ खो दिया, अहं और मम का खो दिया, वह पूर्ण हो गया। यदि हम एक ही स्थान पर रहे तो हमारा कुछ उद्धार न हुआ। वानप्रस्थ में सत्य हमारा स्वरूप बन गया। अब हम सत्य की उपासना करते हैं। इसी प्रकार भक्त कहता है कि परमेश्वर का हम से त्याग न हो, वेचा न जाय, बेचा गया लोभ के कारण। वेद ने कहा—

यदि वीरो अनुष्यादग्निमिन्धीत मर्त्यः।
आजुह्वद्धव्यमानुषक् शर्म भक्षीत दैव्यम् ॥
साम० पू० प्र० १:२, द० ४, मं० ॥२॥

शब्दार्थ—(यदि) जब (वीरः) पुरुष ब्रह्मचर्य आदि द्वारा वीर्यवान् एवं पुत्रवान् (अनुष्यात्) हो जाय तब (अग्निम्) उस ईश्वरीय अग्नि को (मर्त्यः) मरणधर्मा पुरुष (इन्धीत) प्रदीप्त करे, अपने अन्तरात्मा में जगावे और (आनुषक्) निरन्तर (हव्यम्) प्राणापान रूप आहुतियों को (आजुह्वत्) उस में ही समर्पण करता हुआ (दैव्यम्) दिव्य प्रकार की (शर्म) सुख और शान्ति का (भक्षीत) भोग करता है।

इस मन्त्र में मनुष्य जीवन के अन्तिम उद्देश्य और उसके साधन बताये गए। अन्तिम उद्देश्य है दुःखों की अत्यन्त निवृत्ति अर्थात् मुक्ति की प्राप्ति। ब्रह्मचर्य आदि आश्रमों की मर्यादाओं का पालन करता हुआ मनुष्य क्रमशः योग द्वारा आनन्द के सर्वोच्च भण्डार परमात्मा को प्राप्त कर सकता है और क्लेशों से छूट सकता है। थोड़े से शब्दों में ही सारे

भाव को भर दिया है। परन्तु वास्तव में देखें तो उस लक्ष्य पर पहुँचना इतना सरल नहीं जितना दर्शाया गया है। मनुष्य घिरा हुआ है शत्रुओं से, सर्दी में सर्दी, गर्मी में गर्मी हमारी दुश्मन हैं। मच्छर, मक्खी, ततैए, बिच्छू और सांप आदि सब हमारे दुश्मन हैं परन्तु इनका तो हम मुकाबला भी कर सकते हैं और बच भी सकते हैं। मच्छर आदि से बचने के लिए मच्छरदानी को ओढ़ लेंगे अथवा अपने आप को किसी प्रकार से बचा लेंगे परन्तु आन्तरिक शत्रुओं से मुकाबिला करना बड़ा कठिन है। इस अवस्था में काम, क्रोध, मोह, लोभ आदि आन्तरिक शत्रुओं से कैसे बचें यह एक समस्या है। यदि इसका हल न हुआ और यदि हम न बच सके तो यह पुनः हमें आवागमन के चक्र में डाल देगा।

जब हमने शत्रु को शत्रु समझ लिया तो फिर हमें भय हो गया और उसे परास्त करने के लिए हम उपाय ढूंढते हैं। परन्तु जब हमने शत्रु ही न समझा और हमने उसके साथ मित्रता गांठ ली तो हम भी डाकू बन गए। शत्रु से प्रेम है तो हम डाकू हैं। हमारी तो इस समय मोह, लोभ, काम, क्रोध सब से मित्रता है। जिन्होंने अंगरेजों को देश का शत्रु और घातक समझा, जिन्होंने देश को बचाने के लिये सब कुछ निछावर कर दिया, फांसी पर चढ़ गये और वे देश को स्वतन्त्र कराकर अपना नाम अमर कर गये। इसी प्रकार जब हम काम, क्रोध आदि को शत्रु समझ लें तो उनको निकाल कर ही दम लेंगे। घर में सर्प घुस आए तो उसको निकालने का मनुष्य पूरा प्रयत्न करता है। सपेरे से निकलवाता है। तो क्या इन राक्षसों को निकालने के लिए कोई सपेरा नहीं है ? नहीं ! सपेरा है सामवेद के दसवें मन्त्र में आया है :—

ओ३म् अग्ने विवस्वदा भरास्मभ्यमूतये महे। देवो ह्यसि नो दृशे ॥१०॥ साम० पू० १-१-१०

भगवान् का भक्त कहता है कि भगवन्! मेरा तो एक आश्रय तू ही है। एक वह पुरुष है जो धनधान्य पुत्र परिवार की प्रार्थना करता है और यह सब कुछ शरीर के लिये है। एक वह है जो शरीर की परवाह नहीं करता वह ऊंचा चढ़ता है और कहता है कि भगवन्, हमारा जीवन आदर और सत्कार का जीवन हो। रोटी मिले तो आदर की मिले। परन्तु ये लोग मध्यम श्रेणी के हैं। पहली श्रेणी के लोग प्राण और दूसरी के उदर को प्रसन्न करना चाहते हैं। आत्मा के लिये कुछ नहीं मांगते।

भगवान् का भक्त इन श्रेणियों से भी ऊपर है। इसकी संज्ञा उत्तम पुरुषों में से है। जो प्रभु से कहता है कि हमें अपना नाम दान दे। नामदान कब मिलता है ? नामदान तो मिला हुआ है। गायत्री में कितने नाम भगवान् के आये हुए हैं परन्तु क्या जपने से नामदान हो जाता है। नहीं यह नाम दान में तो नहीं मिला। यदि दान में मिल जाता तो हमारा हो जाता। नाम दान नहीं मिलता तो नाम तो मेरा हो गया। भूखे को खिला दिया उसकी भूख मिट गई, प्यासे को पिला दिया उसकी प्यास मिट गई। दान तो बन्धनों को काटने वाला है। अगर हमारे बन्धन कट गये तो दान मिल चुका। हम तो नाम को चुरा लेते हैं यह दान नहीं। विद्या पढकर आये तो वह क्या दान लेकर नहीं आये पैसा देकर प्राप्त किया। इसलिये उनका भी छुटकारा नहीं होगा। दान मिलता तो शान्ति आ जाती। इस लिये कहा भगवन् हमें, वह सद्गुरु मिलाओ जो सत्य को जान चुक हैं उनके द्वारा अपना मार्ग मालूम हो जायगा।

राधास्वामी मत के अन्दर जायें तो सबसे पहले प्रश्न वे यह करते हैं कि आप कैसे आए। जब उत्तर मिलता है दर्शन करने। तो पूछते हैं कि क्या नाम दान लिया हुआ है। यदि नहीं लिया हो तो उसको मिलने नहीं देते। मनु महाराज ने कहा—

सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते ॥

वेद का दान सबसे उत्तम दान है। मैं दान नहीं ले रहा। आप ले नहीं रहे। जो स्वयं भूखा है दूसरे को क्या देगा। मैं वेद जानता नहीं हूँ मुझे तो दान नहीं मिला हुआ है। मैं पोथी का लिखा सुना रहा हूं, न दानी हूं न आप लेने वाले हैं। यदि सचमुच मैं वैसा होता जैसे ऋषि दयानन्द जो प्रकाण्ड पण्डित था जिसकी किरण घर-२ पहुंची और पहुंच रही है तो क्या अच्छा होता। हम तो नकल कर रहे हैं। शायद कभी असल बन जाँय। किसी के सिर पर गठड़ी थी। कपड़े में सुराख था। कनक के दाने गिर पड़े। भूमि तैयार थी वह उग आई। इस प्रकार हो सकता है किसी की भूमि तैयार हो रही हो और यह बीज उसमें पड़ जाय। जैसे छज्जू भक्त जब गली में जा रहा था सामने भंगिन आ रही थी तो भंगिन को देखकर कभी वह गली के एक सिरे पर होता कभी दूसरी ओर। उसे इस दुविधा में देखकर भंगिन ने कहा भक्त जी एक ओर हो जाओ। भूमि तैयार थी। इस समय तक छज्जू कभी माया से प्यार करता कभी राम से।

इन शब्दों ने आंखें खोल दीं। दुविधा में दोनों गए माया मिली न राम। छज्जू को समझ आ गई और चौबारे में बैठकर ही भगवान् की ओर मग्न हो गया। तभी से कहा है 'जो सुख छज्जू के चबारे न बलख न बुखारे।'

शंकर को चूड़ा (भंगी) मिला। शंकर ने कहा कि हट जाओ। चूड़े ने पूछा, आप कौन हैं? शंकर ने कहा मैं ब्रह्म का प्रचारक हूं। तो चूड़े ने पूछा क्या जिस टोकरी को मैंने उठाया हुआ है उसमें ब्रह्म है, टट्टी में है, झाड में है। शंकर ने उत्तर दिया, हां। तो चूड़े ने कहा तुम ब्रह्म का प्रचार नहीं कर सकते, जाओ। भूमि तैयार थी, शंकर के नेत्र खुल गए कि अरे शंकर जब सर्वत्र ब्रह्म को देखता है और 'एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति' का प्रचार करता है तो चूड़े को कैसे कह सकता है कि हट जाओ। ब्रह्म के प्रचारक में भेद भाव कैसे?

इसलिये भक्त कहता है न अन्न चाहिये न मान, मुझे तो नाम चाहिये। मुझे सदगुरु प्राप्त कराओ। भगवान् तो अन्दर बैठे हैं जब पर्दा उठाया दर्शन हो गए। भक्त ने कहा ऐसी बुद्धि प्रदान करो कि तेरे नाम को किसी हाल, किसी काल में न बेचें।

साम क्या है?

साम बराबर है स+अ+म। मानो स और म के दरम्यान अ है। "म" प्रकृति, माया, प्रलोभनों में फंसाने वाली है और स जीव है। "अ" परमेश्वर है। अब माया ईश्वर को उलांघ कर कैसे जीवात्मा को प्रलोभन दे सकती है। अब भक्त को सर्वत्र भगवान् नजर आता है। जब भक्ति के द्वारा भगवान् को मध्य में ले आता है तो माया का सांप उसे डस नहीं सकता। इसलिए सामवेद के इस मन्त्र द्वारा भक्त कहता है कि प्रभु देव! आओ मेरे और माया के दरम्यान आओ, ताकि मैं माया के प्रलोभनों से बच कर तेरे दामन को कभी न छोड़ूं, तेरे नाम को कभी न बेचूं। भगवान करें कि हमें ऐसी बुद्धि, बल और योग्यता प्रदान हो कि जिससे हम भगवान् के नाम की महिमा को जान सकें।

वेदोपदेश

(प्रभु कृपा के बिना दुःखों का अन्त नहीं हो सकता)

ओ३म् अव रुद्रमदीमह्यव देवं त्र्यम्बकम् !
यथा नो वस्यसस्करद्यथा नःश्रेयस्करद्यथा नो व्यवसाययात् ।।
यजु० ३-५८ ।।

इस मन्त्र में बताया गया है कि मनुष्य को सावधान रहना चाहिये। वह कभी यह न समझे कि मैं जो चाहूं, वही कुछ हर हाल और हर काल में अवश्य ही कर लूंगा। इस मन्त्र पर विस्तार से कुछ कहने से पूर्व इसका पदार्थ दे देना उचित प्रतीत होता है।

पदार्थ इस प्रकार है।

पदार्थ—हम लोग (त्र्यम्बकम्) तीनों कालों में एक रस ज्ञान युक्त (देवम्) दाता (रुद्रम्) दुष्टों को रुलाने वाले जगदीश्वर की उपासना करके सब दु:खों को (अव अदीमहि) अच्छे प्रकार नष्ट करें (यथा) जैसे परमेश्वर (न:) हम लोगों को (वस्यस:) उत्तम २ वास करने वाले (अवाकरत्) अच्छे प्रकार करे, (यथा) जैसे (न:) हम लोगों को (श्रेयस:) अत्यन्त श्रेष्ठ (करत्) करे (यथा) जैसे (न:) हम लोगों को (व्यवसाययात्) निश्चय करने वाले करे वैसे सुख पूर्वक निवास कराने वा उत्तम गुण युक्त तथा सत्यपन से निश्चय देने वाले परमेश्वर ही की प्रार्थना करें।

अनेकों बार देखा जाता है कि कई डाक्टर वैद्य लोग शर्तिया चिकित्सा के विज्ञापन देते हैं और बड़े गर्व के साथ कहते हैं कि हमारी अमुक औषधि अमुक प्रकार के भयङ्कर से भयङ्कर और पुराने से पुराने रोग का अचूक बाण है। रोग उसके सन्मुख ऐसा दौड़ता है जैसे गधे के सिर से सींग। ऐसी अभिमान युक्त बात करते हुए वह परमात्मा को सर्वथा भूल जाते हैं।

किसान का पुरुषार्थ तभी सफल होता है जब परमेश्वर की कृपा की दृष्टि होती है। किसान कभी यह दावा नहीं करता कि मेरा यह बीज डाला हुआ अवश्य ही फल लायगा, वह डालते ही प्रभु की ओर दृष्टि रखता है और उसी के आश्रित होकर ही रहता है। इसी प्रकार मनुष्य जैसे कार्य धनबल और बुद्धिबल से करते हैं वह तब तक सफल नहीं होते जब तक परमेश्वर की कृपा न हो। पर वाह रे मनुष्य ! प्राय: यही

देखते हैं कि जब तुझे सफलता प्राप्त हो जाती है, तो तू अपने ही बुद्धि बल तथा धन बल पर ही इतराता है और उसी का ही जिक्र करता है, परमेश्वर की कृपा को तो तू भूल ही जाता है। नाम ही नहीं लेता। जिसके बिना हमारा कोई भी कार्य सिद्ध नहीं होता उसका भुला देना कितने आश्चर्य की बात है तभी तो वेद भगवान् ने मानव की इस त्रुटि को सामने रखते हुए चेतावनी रूप में बता दिया कि याद रख ! कोई भी कार्य बिना प्रभु की कृपा के सफल नहीं हो सकता। देखो सूर्य हमें प्रकाश देता है हमारी आंख देखती है कि जिसके द्वारा यह शरीर देवताओं का दी हुई सम्पत्ति से लाभ उठाता है। परमेश्वर ने एक चीज दी जिसका नाम प्राण है ।

प्राण का महत्व

हमारे देवताओं का आशीर्वाद व्यर्थ हो जाय यदि प्राण साथ न दें अर्थात् सहयोग न दें। नेत्र तब देखते हैं जब प्राण उसके भीतर कार्य करता है : इसी प्रकार नासिका, कान, जिह्वा आदि किसी वस्तु को ग्रहण नहीं करते जब तक प्राण साथ न दें। मल मूत्र विसर्जन भी बिना प्राण की गति के नहीं हो सकता। प्राण ! इतना सहायक है !! यह परमेश्वर की विलक्षण देन है यदि श्वास इच्छा पूर्वक लेना पड़ता तो हम कोई भी कार्य न कर सकते। क्यों ?

कारण कि जीवन रक्षा के लिए तो प्रतिक्षण हमें प्राण लेने की क्रिया करनी पड़ती है। वर्तमान स्थिति में तो हम संसार के सब व्यवहार करते हैं। प्राण अनायास आ जा रहा है। हाथ से कार्य करने के लिये हाथ को हिलाना पड़ता है। नेत्र से देखने के लिये नेत्रोन्मीलन करना ही पड़ता है। परन्तु प्राण तो बिना हमारे कुछ निवेदन किये बिना किसी पुरुषार्थ तथा परिश्रम के कार्य कर ही रहा है। यह सर्वत्र फैला हुआ है। यह हमारे सब कार्य कर रहा है। हम इसका कुछ भी नहीं कर रहे। यह सहायक आदि में है, अन्त में है। पुरुष प्राण का मूल्य नहीं दे सकता। हम तो यह भी नहीं जानते कि वायु में प्राण कौनसा है और कहां है, परन्तु यह नितान्त सत्य है कि वायु के अन्दर प्राण विचर रहा है।

अद्भुत नासिका शक्ति

परमेश्वर ने नासिका के अन्दर अद्भुत कला रक्खी है कि वह

आप automatically कार्य करती और प्राण ही ले लेती है जो मेरे जीवन की रक्षा करने वाला है।

आश्चर्य ?

इसका मूल्य होता, बाजार से क्रय करना पड़ता तो हम कहाँ से अदा करते। बिड़ला सेठ का भी दिवाला निकल जाता। पर आश्चर्य! आश्चर्य!! हम उस प्राण दाता को भूल गये।

याद कैसे हो ?

उस दाता की याद कैसे आए ? जब तक मंजिल का, ध्येय का ही ज्ञान नहीं वह अपनी प्रगति की मर्यादा कैसे बांधे ? यदि मुझे मालूम हो कि मेरे पास एक घण्टे का समय है और मैंने एक कोस चलना है तो मैं अपनी प्रगति की मर्यादा निश्चित कर लूंगा। यदि यह ज्ञान हो कि मुझे दिन भर का अवकाश है तो टमक-टमक कर चलूंगा। हमें तो ज्ञान नहीं कि परमेश्वर का ध्यान कितनी दूर है। जिसको अधिक यात्रा करनी होती है वह समझता है कि मैं पैदल नहीं पहुंच सकता, साईकल पर चढ़ता है, यदि साईकल से भी काम न हो सके तो मोटर पर चढ़ता है। परन्तु परमेश्वर की मंजिल का किसी ने ध्यान नहीं किया। अन्न, धन कमाना हो तो सर्व प्रकार के साधन प्रयुक्त करेंगे, अपना सारा ज्ञानबल, बुद्धिबल उसके उपार्जन तथा वृद्धि में ही लगा देंगे। बस, उस अवस्था में हमें यही विचार रहता है कि हमारी यह कामना कैसे पूर्ण हो। बालक को पौण्ड और पैसा दे दो समान हैं। हमारे लिये पौंड जो परमेश्वर का ज्ञान है ऐसा ही है जैसे बालक के लिये पौंड और पैसा है, इस यात्रा को (जीवन यात्रा को) सुखी बनाने के लिये आवागमन के चक्र से छूटने के लिये चिन्ता नहीं।

वेद ने कहा—

तीनों काल के अन्दर एक रस रहने वाला भगवान् का जो एक ज्ञान है, उस ओ३म् ज्ञान को हम नहीं जानते। उस भगवान् को हम आपत्ति में पुकारते है। वह पैदा करने वाला है। भगवान् का नाम रुद्र है। जिस समय चारों ओर अन्धकार होता है तो मुक्त कण्ठ से अनायास

परमेश्वर का नाम निकलता है। उस भगवान् की पुकार पहले क्यों न की ?

गुरु नानक ने कहा है—

> **दु:ख में सिमरे सब कोई, सुख में सिमरे न कोय।**
> **जो सुख सिमिरे नानका, दु:ख काहे को होय॥**

उसे मित्र क्यों न बनाया—

कारण

हमारे अन्दर न्यूनता है कि निश्चयात्मक बुद्धि नहीं है। जब तक ज्ञान न हो जाय कि परमेश्वर ही हमारी सर्व आवश्यकताओं को पूरी करता है, हम उसकी शरण में कैसे जाने लगे हैं और कैसे उसे अपनाने लगे हैं ? भगवान् हम से दूर-दूर ही प्रतीत होता है, यद्यपि वह सर्व व्यापक है। क्या वह रूठ रहा है ? विचार करने से पता लगेगा कि वास्तव में हमारे कार्य ऐसे हैं कि जिनकी कृपा से हम उससे पृथक् हो रहे हैं। कल्पना करो एक बड़ा सुन्दर चित्र आपका रक्खा है, किसी बालक ने पेन्सिल उठाकर उस पर लकीरें लगा कर उसके सौन्दर्य को विकृत कर दिया तो आप तुरन्त उसे थप्पड़ लगा देंगे तो क्या परमेश्वर को परम विचित्र सुन्दरता को हम यदि बिगाड़ दें तो क्या वह रुष्ट न होगा ? होगा, अवश्य होगा। उसने सुन्दर हस्त दिया, नयन दिये। हमने नयन को विकृत कर दिया तो उसने अगले जन्म में हमें चक्षु दोष सम्पन्न बना दिया, ऐसे ही नहीं कि जिसको चाहे रूपवान् बना दे और जिसको चाहे कुरूप बना दे। उसका प्रत्येक कार्य न्याय पर निर्भर है। कुरूप अथवा दोष युक्त होना भगवान की सुन्दरता के विकृत करने का परिणाम है। हम भगवान् की बनाई चीजों की रक्षा तथा सत्कार करते, अन्त में वह सुन्दर भगवान् हमें अपना ही रूप दे देता।

माता पिता रूपवान् हों, तो वह अपनी सन्तान को रूपवान बनाने का प्रयत्न करते हैं।

मनुष्य परमेश्वर की आज्ञाओं का पालन करता हुआ उसके सौन्दर्य की रक्षा करता है। जिस स्वरूप के देखने पर ईश्वर का स्मरण हो जाय वही सुन्दर स्वरूप है। जैसे किसी बालक को देखकर हम पूछते हैं कि

तुम किसके बालक हो, जब वह कहता है कि अमुक के, तो हम कहते हैं हा भाई ! तुम्हारा स्वरूप उससे मिलता-जुलता है।

संशयनिवृत्ति

सन्तों के पास जाते ही संशय मिट जाते हैं। लोग उन्हें कहते हैं, 'भगवान्' अब उसके स्वरूप का देखकर संशय निवृत्त हो गए और उसको भगवान् मानकर ही उससे दुःख निवृत करते हैं। परमेश्वर का तब तक नहीं बनता जब तक यह न समझे कि सर्व आवश्यकताओं को वही पूर्ण करता है। भगवान् के होने न होने पर हमें हर्ष शोक नहीं है। हमें हर्ष है संसार की उन वस्तुओं में जिनका हमें ज्ञान है।

आर्य कम बने

हमारे नियम कितने उच्च हों परन्तु जब आचरण नहीं, यह किस काम के ? आर्य समाजी होने के नाते हमने बहुत लोगों को आर्य समाजी बनाया और रजिस्टर में उनका नाम अङ्कित भी हो गया। परन्तु जिसका नाम अङ्कित न हुआ और आचरण आर्यों का सा है संस्कार है, हवन करता है तो हमने समझा कि वह भी आर्य समाजी है। समाजी बहुत बन गए आर्य कम बने। तो इस अवस्था में समाज किस को होगी, लूलों को अर्थात् शिथिल अङ्गों को।

भक्ति जीवन है

भक्ति तो जीवन है। भगवान् का ज्ञान नहीं होता जब तक उसके साथ न रहेगा। बढ़ई को लकड़ी का ज्ञान न होगा जब तक दिन भर लकड़ी के साथ न रहे। भगवान् का संग हमने एक घण्टा भी न किया, कह देने मात्र से संग नहीं होता।

फिर कैसे देखें ?

इन्द्रियाँ संसार का ज्ञान कराती हैं साकार का आकार वाली देखेंगी, निराकार को आकार रहित ही देखेगा। मन और बुद्धि तो आकार वाले हैं। उनका वही आकार है जैसे जल को जिस पात्र में डाल दो, वसा बन जायगा। किसी की मृत्यु पर शोक प्रकट करने जाओ, शोक मुख पर

छा जायगा । भीतर मन ने अपना आकार बनाकर मुख पर छाप लगा दी। सो मन और बुद्धि का आकार है । परमेश्वर उनसे नहीं जाना जाता । आत्मा ही जान सकता है, अकेला नहीं जान सकता, यह अन्यों की सहायता चाहता है कि वह देव-इन्द्रियों का मुख भीतर की ओर हो जाए, बाहर कुछ भी न देख । अतः परमात्मा को देखने के लिए अन्तःकरण से सकल उत्तम सामग्री से विशेष भक्ति करें।

पूजा क्या है ?

इन्द्रियों से हटना अर्थात् उन्मुख होना परमेश्वर की पूजा है, विषय में आसक्त होना परमेश्वर से विमुख होना है ।

फिर बाधा क्या है ?

फिर कौनसी बाधा है जो यह निश्चय नहीं होने देती कि भगवान् ही सब कुछ देता है । ससार के विषय अपनी ओर खींचते हैं और उधर जाने नहीं देते । इससे भी बढ़कर जो बाधा है वह मनुष्य का स्वार्थ है। हमारी कोई वस्तु परमेश्वर से पूरी नहीं होती, मैं कुछ करना चाहता हूं वह इच्छा मेरी पूरी नहीं करता अतः मुझ उससे प्रेम नहीं हो सकता। मेरी पूर्ति स्वार्थ से विषयों से होगी । जिस व्यक्ति के अन्दर स्वार्थ नहीं रहा, उसका दर्पण साफ हो जायगा । स्वार्थ मिट जाय तो कोई कष्ट नहीं, अतः परमेश्वर-प्राप्ति के लिये स्वार्थ को, जो विषयों से सम्बन्ध रखता है, हटाना होगा।

अपने आपको बनाओ

परन्तु स्वार्थ का एक दूसरा ज्वलन्त पहलू भी है। स्व—आत्मा अर्थ— लक्ष्य, ध्येय, तो स्वार्थ से आत्मा का ध्येय अभिप्रेत है । आत्मा का ध्येय सर्वदा सामने रक्खो । परन्तु हमारी दशा ही और है । हम तो जो काम करते है वह अपने लिये नहीं दूसरों के लिये । आर्य समाज कहता है पण्डित बुलाओ जनता के लिये । अपने लिये नहीं । उत्सव होता है, धुरन्धर विद्वान् आकर उपदेश दे जाते हैं, मन्त्री, प्रधान प्रबन्ध में ही लगे रहते हैं, उनको उपदेश सुनने का अवकाश ही नहीं मिलता । उन्होंने समय का त्याग तो किया. पर संसार के लिये, अपने लिये नहीं । प्रत्यक्ष देखने में यह बड़ा भारी त्याग है परन्तु जिस प्रकार कूप के लोटे उपकार करते हैं,

भर भर कर आते हैं और निसार में सर्व त्याग करते हैं। निसार भी त्याग करती है वह जल को आगे पहुँचा देती है। निसार से खाडे में, खाडे से नाली में, नाली से खेत में जल जा पहुँचा। लोटों ने, निसार ने, खाडे ने, नाली ने सब ने त्याग किया परन्तु इस त्याग का परिणाम क्या निकला, यही कि लोटा लोटे की फाँसी (रस्सी), छेवल (काही), खाडा, नाली सब में दुर्गन्ध पैदा हो गई, दूसरों के लिये त्याग किया, अपने लिये कुछ नहीं किया। प्रफल्लित न हुए, बहुमूल्य जल को धारण ही न किया। जिसने धारण किया वह तो हरा भरा हो गया। खेत ने धारण किया वह हरा भरा हो गया। जनता में से जिसने भी उपदेश को धारण किया, उन्नत हो गया। प्रधान और मन्त्री में अथवा प्रबन्धकर्त्ताओं में तो अभिमान की अकड़ ने दुर्गन्ध पैदा कर दी। अतः सर्वप्रथम अपने आपको बनाओ। ऋषि दयानन्द ने अपने को बनाया, महात्मा गांधी ने अपने को बनाया, मानापमान से वे उपरत हो गये। उन्होंने पहले अपने को बनाया, तप किया फिर काम किया।

ऋषि दयानन्द का तप

कुम्भ के महोत्सव पर ऋषि दयानन्द ने देखा कि मैं विरोध नहीं कर सकता, चण्डी पर्वत पर जाकर तप किया। चार वर्ष पर्यन्त नग्न भ्रमण किया। शीतोष्ण को सहन किया, सिंह, बघियाड़, हस्ती आदि के समूहों में घूमे, डट कर विरोध किया। जब देखा कि पक गया तब प्रचारार्थ निकले।

बिना तप के कुछ भी प्राप्त नहीं हो सकता

कोयले को अग्नि में डालो, तो जब उसके अन्दर अग्नि प्रविष्ट हो जायगी, अग्नि बन जायेगा। जल में जब अग्नि प्रवेश कर गई तो वह आकाश में चढ़ जायेगा। भगवान् की अग्नि में जिसने अपने आपको तपाया, वह सर्वत्र भगवान् की तरह फैल गया। महात्मा गांधी की विभूति भी फैल गई। बिना तप मनुष्य सत्य को, नहीं-नहीं, कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकता इसलिये कहा—

प्रमाण

ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत। भगवान् ने ऋत और

सत्य को तप से प्रकट किया, इसलिये उसका सत्य कायम है। गांधी का सत्य इसलिये कायम है कि उसने तप किया । आर्यसमाज ने तप नहीं किया ।

तप क्या है ?

बड़ा तप है हानि लाभ को सहना, इससे बड़ा तप है मान अपमान की उपेक्षावृत्ति । इस तप का सम्बन्ध आत्मा के साथ है। शीतोष्ण का तप शरीर का तप है । हानि लाभ का सहना बुद्धि का क्षुधा पिपासा का तप प्राण का तप है । जिसने अहङ्कार का त्याग कर दिया, वह परमात्मा को पायेगा । इसलिये महर्षि ने नियम बनाया, ससार का उपकार करना आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य है । अत: यह शरीर संसार के काम आवे । मन में प्रीति हो और अभिमान का त्याग हो, तो जब ऐसी अवस्था आ जाय, समझ लो, पग आगे बढ़ रहा है ।

अभिमान का त्याग और मन में प्रीति सच्ची प्रार्थना से प्राप्त हो सकते हैं । प्राथना निर्जीव न हो, जिस प्रार्थना को करे उसमें जीवन डाल दे । इस पर विचार करना ही समाधि है । यह बड़ा कर्म है । कहने और करने में बड़ा अन्तर है, कवि ने कहा है—

कहना करना दो हैं भाई,
करने की है नेक कमाई ।
कहना कह कर जाव थक,
करना पहुँचे मञ्जिल तक ।।

जब तक मनुष्य इसको न जाने, वह कुछ नहीं कर सकता । थोड़ा करे, समझ से करे तो उसका बेड़ा पार है । भगवान् करे कि हमें शक्ति और बुद्धि प्राप्त हो ताकि हम महर्षि के शब्दों में "कोई भी मनुष्य ईश्वर की प्रार्थना वा उपासना के बिना सब दु:खों के अन्त को नहीं प्राप्त हो सकता । क्योंकि वही परमेश्वर सब सुखपूर्वक निवास वा उत्तम-उत्तम सत्य निश्चयों को कराता है इससे जैसी उसकी आज्ञा है उसका पालन वैसा ही सब मनुष्यों को करना चाहिये ।" प्रदर्शित भाव को समझें और उन्हें जीवन में घटाते हुए सर्व-गुण-सम्पन्न बन सकें ।

ओ३म् शम् ।

मनुष्य जीवन का उद्देश्य तथा उसके साधन

ओ३म् इषे त्वोर्जे त्वा वायव स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण आप्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मा मा वस्तेन ईशत् माघशंसो ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात् बह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि ॥ यजु० १।१॥

यह यजुर्वेद का पहला मन्त्र है, विस्तार से इस मन्त्र का अर्थ तथा भावार्थ महर्षि के वेद भाष्य में ही अवलोकन कीजिये। यहां हमें केवल यह बतलाना है कि मन्त्र में मनुष्य जीवन के ध्येय को बतलाया गया है। वैसे तो प्रत्येक व्यक्ति मौखिक रूप से कह देता है कि प्रभु की लीला बड़ी विचित्र है, परन्तु वास्तव में उसकी लीला को विचित्रता भान करने वाला कोई-कोई होता है। जिस समय प्रभु की लीला को देख कर मनुष्य आश्चर्य में आ जाता है तब उसमें श्रद्धा आजाती है। कभी आपने सोचा कि प्रभु ने पक्षियों को क्यों बनाया? साधारण व्यक्ति तो यही उत्तर देता है कर्म फल भोगने के लिये। तो यही उत्तर प्राणियों के लिये होता है। पशुओं को बनाया तो कर्म फल भोगने के लिये। मनुष्यों को बनाया तो भी कर्म फल भोगने के लिये। यदि ऐसी बात है तो फिर विशेषता क्या रहती है। आध्यात्मिक मार्ग पर चलने वाले लोग भान और विचार करते है, उनका कहना है कि भूमि पर जो मल पैदा हो जाता है और विष फैल जाता है, उसका विनाश करने के लिए प्रभु ने कृमि, कीट आदि क्षुद्र जन्तु पैदा किये और फिर ये क्षुद्र जन्तु जो कृषि आदि को हानि पहुँचाते है, उनको दूर करने के लिये प्रभु ने काक आदि पक्षी बनाये। पक्षियों के लिये खाद्य वस्तु कृमि हैं, उनकी वह सफाई कर देते है। पशु मनुष्य के काम आते हैं, मानो प्रत्येक दूसरे कार्य करने के लिये उत्पन्न हुआ है। इसलिये मनुष्य बनाया गया अपने काम करने के लिये नहीं, अपितु परमेश्वर का काम करने के लिये और तभी मानव जीवन सर्वश्रेष्ठ जीवन है। मनुष्य अपना काम कभी नहीं करता। प्रत्येक प्राणी दूसरे का यज्ञ कर रहा है।

यज्ञ क्या है

सब से श्रेष्ठतम कर्म यदि कोई है तो वह यज्ञ है। परमेश्वर दया

नो दया नहीं कर सकते । गाय का बछड़ा एक ही खुरली न्धा हो और गाय के सामने चारा पड़ा हो, बछड़े के ता गाय कभी अपने बछड़े को चारा न देगी, स्वयं खाती रहेगी, बछड़ा बेचारा चाहे भूखा तड़पता ही रहे, उसे दया न आयेगी। बछड़े के सामने जल भरी बाल्टी पड़ी हो, स्वयं पीवेगा, माता को नहीं देगा चाहें वह प्यास से व्याकुल ही क्यों न हो। इसी प्रकार पशु न न्याय कर सकता है और न कृपा। दया, न्याय और कृपा तो परमेश्वर कर सकता है। आरम्भ चीज सत्य है, अन्तिम चीज भी सत्य है। सत्य उसका साधन है, यज्ञ ही सत्य है।

भगवान तो हमारा सुख है, बल है, अन्न है, ज्ञान है 'इषे त्वोर्जे त्वा' बल देने वाली चीजें कौनसी हैं—संसार में बल देने वाली दो चीजें हैं धन और ज्ञान। धन के त्याग देने में और ज्ञान के ग्रहण करने में बल है। यह बल किसे मिलेगा? शरीर की पुष्टि के लिए तो धन चाहिये। ज्ञान से शरीर को कोई लाभ नहीं। तो यह बल मिलेगा आत्मा को। परमेश्वर का काम भी वही कर सकता है जिसके अन्दर आत्मिक बल हो। इससे यह परिणाम निकला कि जब मनुष्य है ही परमेश्वर का काम करने के लिए और परमेश्वर का काम वही कर सकता है जिसके अन्दर आत्मिक बल हो तो हमें आत्मिक बल ही पैदा करना चाहिये। शारीरिक बल वाले परमेश्वर का काम नहीं कर सकते और न ही बुद्धि बल वाले वह काम कर सकते हैं। शारीरिक बल वाले मनुष्य का काम कर दें, प्रभु का काम उनसे तब तक नहीं हो सकता जब तक आत्मिक बल साथ न हो।

आत्मिक बल प्राप्त करने के लिए त्याग और ग्रहण की आवश्यकता है। लाला मुन्शीराम ने जब ८,०००) का सद्धर्म प्रचारक यन्त्रालय, ३०,००० की जालन्धर की कोठी और पुत्रों तक का त्याग कर दिया तो आत्मिक बल प्राप्त हो गया और महात्मा मुन्शीराम कहलाने लगे। जनता की दृष्टि में मान्य बन गए। परन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि त्याग और ग्रहण तब तक नहीं हो सकते जब तक श्रद्धा न हो। "श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्" तो श्रद्धा हमारे लिये बड़ा भारी शस्त्र है।

श्रद्धा क्या है ?

शास्त्रकारों ने कहा, श्रद्धा मानव जाति की जीवन यात्रा का बड़ा

सहायक है और यह तब तक उसके साथ रहेगी जब तक कि वह अपने विकास की उस अवस्था को प्राप्त न हो जाय, जहां श्रद्धा, ज्ञान और पूर्ण अनुभव में परिणत हो जाती है। जैसे शरीर में प्राण सहायक है ऐसे ही आत्मिक उन्नति के लिये श्रद्धा का सहारा है। इसका आदि श्रद्धा है, अन्त ऐसे हो कि जिसके लिये वह श्रद्धा कर रहा है, वह उसमें परिवर्तित हो हो जाय। अन्न खाते हैं शरीर के लिये। जब तक अन्न भिन्न-भिन्न रूपों में है, अन्न ही है। रवा, चोकर, मैदा, आटा, पूड़ी, कचौड़ी, कुछ बनाओ, वह गोधूम ही है परन्तु जब वह उदर में पड़ कर शरीर का भाग बन जाय तो अन्न का काम समाप्त हो गया। तो हमारा अन्तिम ध्येय ज्ञान की प्राप्ति है जिसका इस यज्ञ में संकेत किया गया है। "ऋते ज्ञानन्न मुक्तिः" ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं होती। ज्ञान बिना श्रद्धा के प्राप्त नहीं हो सकता इसलिये योगियों ने कहा कि श्रद्धा हमारी आन्तरिक सत्ता का प्रथम विकास है जो हमारी बाह्य चेतना का स्पर्श करता है, यही अन्तरात्मा की जागृति का प्रत्यक्ष चिह्न है।

श्रद्धा दो प्रकार की है

श्रद्धा दो प्रकार की है। एक विशुद्ध निश्चल, निर्दोष और दूसरी अशुद्ध। विशुद्ध श्रद्धा आत्मा की श्रद्धा है और बड़ा बनने की आकांक्षा के लिये जो श्रद्धा है वह अशुद्ध और क्षुद्र है। अभिमान, दम्भ, प्राण की स्वैरिता अहंता, क्षुद्र, वासना की तृप्ति यह सब अशुद्ध श्रद्धा है। तो सब साधनाओं के लिये श्रद्धा आवश्यक है वस्तुतः श्रद्धा के बिना सब साधनाएं अपङ्ग और अपाहज हैं।

श्रद्धा क्यों पैदा नहीं होती ?

अब प्रश्न है कि श्रद्धा क्यों पैदा नहीं होती। वह कौनसी वस्तु है जो उस के मार्ग में बाधा डालती है। किसी के विचार में 'संशय' श्रद्धा नहीं होने देता, कई लोग तो मोह और अहङ्कार को इसका कारण बताते हैं। यह सब ठीक है पर इस ठगनी माया का प्रधान मन्त्री अहङ्कार है, संशय उसकी सी. आई. डी. के विभाग का प्रमुख अधिकारी है। संशय आया, विश्वास टूटा, श्रद्धा और प्रेम न रहा। हमारी बुद्धि संशयात्मिका है, इसलिए हमारा काम नहीं बनता। हमें परमेश्वर में संशय नहीं, परन्तु उसके कर्म फल देने में हमको संशय है। यदि हमें इसमें

विश्वास हो जाय तो हम कभी बुरा काम करें ही नहीं। जैसे एक निर्धन व्यक्ति मलिन और जीर्ण वस्त्र नहीं उतारना चाहता, समझता है कि नंगा हो जाऊंगा, इसी प्रकार हम अपने पुराने कुसंस्कारों के अभ्यास से कुवृत्तियों को छोड़ते नहीं।

सांसारिक विषयों में हमारी प्रीति है। मोह में, लोभ में, क्रोध में संशय नहीं हुआ। संशय हुआ परमेश्वर के कर्म फल देने के नियम में, संशय हुआ धर्म में। बुराई में किसी प्रकार का संशय नहीं। जैसे यदि हमारे सामने भोजन रखा हो और कोई संशय डाल दे कि इसमें तो विष है हम अच्छे से अच्छे दीखने वाले भोजन को भी ग्रहण नहीं करेंगे, उसका परित्याग कर देंगे, इसी प्रकार यदि हमें संशय हो जाय कि बुराई में विष है तो हम बुराई करें ही न, उसे छोड़ दें। अतः कहा कि 'वायवः स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणे' इन्द्रियों को बाँधो, पलटो, यज्ञ की ओर मेरा (परमेश्वर का) कार्य करो।

जो लोग अपने देश तथा अपनी जाति का कार्य करते हैं, वे अपना काम करते हैं, परमेश्वर का नहीं करते।

परमेश्वर का कार्य कौनसा है ?

इसलिए ऋषि ने लिखा कि "संसार का उपकार करना आर्य-समाज का मुख्योद्देश्य है।" संसार परमेश्वर का है हमारा नहीं है, तो संसार का कार्य ही परमेश्वर का कार्य है, यज्ञ में ही विष्णु प्रतिष्ठित है, यज्ञ को विष्णु से पृथक् नहीं कर सकते, इसी लिए कहा "यज्ञो वै विष्णुः" यह यज्ञ हमारे लिये नहीं, भूमि विशेष के लिये नहीं, अपितु सर्व संसार के लिए है। इस सिद्धान्त को आर्यों ने भलीभांति समझा, इसलिए शास्त्र-कारों ने मर्यादा बांधी कि ८ वर्ष से ७५ वर्ष तक ही हवन यज्ञ करो क्योंकि इसका समझना और आचरण में लाना कठिन है; अनुमान लगाया कि इतने काल में मनुष्य पूरा ढल जायगा। कोयला हीरा बनता है, लाखों वर्ष लग जाते हैं। मनुष्य जन्म हीरा जन्म है, इसको जो पापों की कालिमा से कोयला बना चुका है, हीरा बनाने के लिये दीर्घ समय चाहिए।

श्रद्धा की मूर्ति श्रद्धानन्द

इसलिये कहा, श्रद्धा को पकाओ। स्वामी श्रद्धानन्द ने अपना नाम

श्रद्धानन्द रखा, यह सहसा नहीं रख दिया, इस नाम के रखने के लिये बड़ी तैयारी करनी पड़ी। बालकपन में ही पुजारी रहा। सत्य को खोज थी। पहले मुन्शीराम था, मुन्शीराम जिज्ञासु बना। सुना कि एक प्रकाण्ड पण्डित वेद का व्याख्यान दिया करते हैं, इच्छा प्रकट की कि उस महान् आत्माके दर्शन करूं तथा व्याख्यान सुनूं। माताने कोठड़ी में बन्द कर दिया कि कहीं जादूगर के जादू में न फंस जाय पर फंस गया। सत्य के ग्रहण करने और असत्य के त्यागने में कटिबद्ध हो गया। आर्यसमाज के प्रधान बनाए गए। उस समय वकालत करते थे तो सोचने लगे कि क्या वकील हो कर भी आर्यसमाज का प्रधान रह सकता हूं। यह श्रद्धा थी। आर्यसमाज कहता है, "वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है—सत्य के ग्रहण करने और असत्यके त्याग करने में सर्वदा उद्यत चाहिए।" सत्य में उनकी कितनी निष्ठा थी, मुख्त्यारी पास करके आये, प्रैक्टिस करने लगे, उनके ऐजेन्ट ने बोर्ड पर 'वकील' लिखा है, कहा, नहीं, मैं तो मुख्त्यार हूं। एजेन्ट ने कहा, महाराज! वकील और मुख्त्यार में कोई भेद नहीं है। कहा, नहीं। यह धोखा है। एजेन्ट ने कहा कि वकील लिखने से काम चमकेगा, कहा, मैंने अपना नाम जिज्ञासु रखा है अत: बोर्ड ठीक कराओ।

एक सेठ आया, बन्दी (बही खाता) दिखाई, बड़ा भारी मुकद्दमा (अभियोग) था। बन्दी पर टिकट लगी हुई न थी, कहा तेरा मुकदमा नहीं चल सकता। जाओ, सेठ को मुन्शीराम जी पर श्रद्धा थी, एजेण्टों के पास गया, उन्होंने कहा, पुरानी टिकट लगा दो, २, ४ दिन के पश्चात् आना जब वकील साहब को बात भूल चुकी होगी। कुछ दिनों के बाद पुरानी टिकट लगाकर सेठ साहिब एजेण्टों के पास आये और ४० रु० फीस देकर मुकद्दमा दे दिया। मुख्तारनामे पर वकील साहब के हस्ताक्षर एजेण्ट ने करा लिये। प्रतिपक्षी (Client) को वकील साहिब के पेश न किया। अभियोग अदालत में दे दिया गया। निश्चित तिथि विपक्षी (Defendant) अपने वकील सहित उपस्थित हुआ, सेठ जी भी आये। मुन्शीराम ने देखा, यह तो वही आदमी है जिसको मैंने इन्कार किया था। अदालत ने बयान लेना चाहा। मुन्शीराम जी ने कहा कि मेरा मुवक्किल झूठा है, बन्दी पर, जब मुझे दिखाई गई, टिकट न थी मैं पैरवी नहीं करता। अदालत ने समझाया कि इस प्रकार तुम्हारा काम बन्द हो जायगा। कहा परवाह नहीं। झट ४० रु० मुवक्किल को वापस कर दिये और अपने एजेण्ट को निकाल दिया। ५००)रु० मासिक आय थी, चोटी

का वकील था, अदालत ने बहुत समझाया, कहा कि "मेरे गुरु" की शिक्षा यही है, सत्य को ग्रहण करने, और असत्य को त्यागने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए। मैं यह केस किसी अवस्था में नहीं ले सकता। यह समाचार सर्वत्र फैल गया। मुन्शीराम की वकालत का काम बैठ गया। इसका नाम है श्रद्धा, सत्य को धारण करना। जहां सत्य की झलक दिखाई दे वहां टूट पड़े, और यदि असत्य की गंध आ जाए, तो वहां से तुरन्त भाग जाए अथवा उसका त्याग कर दे। वेद ने कहा, "श्रद्धया सत्यमाप्यते" (यजु० १९-३०) तो श्रद्धा आत्मा का प्राण है। इसी प्रकार जिस आत्मा में श्रद्धा है उसका मूल्य है और जिसके अन्दर श्रद्धा नहीं है वह फूटी कौड़ी की कीमत का भी नहीं। प्राण निकल जाए तो अपने की भी कौड़ी कीमत नहीं है। संसार में चाहे और किसी को कीमत न हो परन्तु अपने घर में सन्तान को माता पिता के सामने और पत्नी की पति को दृष्टि में बड़ी कीमत है। निर्धन स्त्री भी कभी लाख रुपया मिलने पर पति को न बेचेगी और न माता पुत्र को, परन्तु जब प्राण निकल जाएं तो उस शरीर की उन प्यारों के सामने भी कौड़ी कीमत नहीं रहती। इसलिए आत्मा का, सबसे बड़ा अपना (बन्धु) परमात्मा है, यदि आत्मा के अन्दर श्रद्धा रूपी प्राण है तो आत्मा की कीमत है नहीं तो परमात्मा की दृष्टि में आत्मा की कोई कीमत नहीं।

श्रद्धा कैसे प्राप्त हो ?

परन्तु श्रद्धा बिना त्याग के प्राप्त नहीं होती। त्याग और श्रद्धा का मेल है। हथेली का सीधा भाग श्रद्धा और पृष्ठ त्याग। त्याग में करुणा और श्रद्धा में प्राप्ति रहती है। सीधा हाथ करने वाला भिखारी है। भगवान् के सामने हाथ पसारने वाला भिक्षुक है।

श्रद्धा का फल

श्रद्धा वाला दीन होगा, ऐसा दीन नहीं जो लोगों के द्वार पर सिर झुकाता फिरे। दीन बनेगा अदीन का। अदीन परमेश्वर है। अदीन के सामने दीन होना वीरता है, दीनों का दीन होना कायरता है। यह विलक्षण दीनता है। पुत्र पिता माता का दीन है परन्तु उसे कोई दीन नहीं कहता है। पत्नी पति की दीन है परन्तु उसे कोई दीन नहीं कहता। इसी

प्रकार भक्त जब अदीन का दीन हो जाता है, तो वह उसका सखा बन जाता है, दीन नहीं रहता।

दृष्टान्त—एक राजा किसी साधु के पास गया, साधु ने पूछा कौन हो। राजा ने उत्तर दिया, कि मैं महाराज हूं स्वामी हूं। साधु ने कहा तुम तो मेरे सेवकों के भी सेवकों के भी सेवक हो, स्वामी कैसे हो। तुम तो विषयों के दास हो और ये विषय मेरे दास हैं। अतः जब तक विषयों पर विजय न पाओगे, अदीन के दीन नहीं बन सकते।

श्रद्धा तो मनुष्य के अन्दर सदा विद्यमान है परन्तु जब अहंकार आता है श्रद्धा टूट जाती है। परमात्मा की आशीर्वाद की धारा अनवरत रूप से प्रवाहित हो रही है, कूप का जल हर समय निकलता है, नहर का जल हर समय बहता है। परन्तु नमी वहां रहेगी जो उसके समीप है जो भूमि का भाग दूर होगा वह शुष्क रहेगा। भगवान् के भक्त २४ घण्टे उसके समीप रहते हैं, उसका आशीर्वाद निरन्तर मिलता रहता है, पानी देने की आवश्यता नहीं इसलिए उसके अन्दर श्रद्धा रहती है, श्रद्धा न हो तो भक्त कैसे बने।

भगवान् करे, श्रद्धानन्द की जीवनी से हम श्रद्धा रूपी गुण ग्रहण करके परमात्मा के श्रद्धालु भक्त बन कर अपने अपने जीवन को उज्ज्वल कर सकें।

॥ ओ३म् शम् ॥

पितृ यज्ञ क्यों और कैसे ?

ओ३म् नमो वः पितरो रसाय नमो व पितरः शोषाय नमो वः पितरो जीवाय नमो वः पितरः स्वधायै नमो वः पितरो घोराय नमो वः पितरो मन्यवे नमो वः पितरः पितरो नमो वो गृहान्नः पितरो दत्त सतो वः पितरो देष्मैतद्वः पितरोवासः ॥ यजु० २-३२ ॥

यजुर्वेद कर्मकाण्ड का वेद है। मनुष्य को जीवन का लक्ष्य क्या बनाना है और कैसे बिताना है और उसके क्या-क्या साधन हैं, यह सब कुछ इस वेद के अन्दर बड़े सुन्दर रूप से निरूपण किया गया है। जो मन्त्र

आज हम पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत कर रहे हैं, वह उसी पवित्र वेद के दूसरे अध्याय का ३२वां मन्त्र है। इस अध्याय में पितरों और यज्ञ के सम्बन्ध में वर्णन है।

इस मन्त्र में अनेक बार 'नमः' शब्द आया है। यह पद अनेक बार शुभ गुण और सत्कार प्रकाश करने के लिये धरा है।

सब से बड़ी बात

मनुष्यों के लिये सब से बड़ी बात यह है कि जिस जन्म को उसने पूर्व जन्म के शुभ कर्मों से प्राप्त किया है, उससे वह न गिरे तो इस पद से हम न गिरें। यह हमारा सब से बड़ा काम है।

मनुष्य और पशु में भेद

पशु जितने भी हैं वे जन्म से मरण पर्यन्त पशु रहते हैं। कुत्ता पैदा हुआ वह कुत्ता ही रहेगा न गौ बन सकता है न गधा, इसी प्रकार गधा भी कुत्ता नहीं बन सकता। कुत्ता कुत्ता और गधा गधा ही रहेगा। माता पिता के रजवीर्य से उत्पन्न होकर उसी को पालना करते हैं, परन्तु मनुष्य रजवीर्य से पैदा होकर मनुष्य नहीं बना, बढ़ना तो दूसरी बात रही। बढ़ता है आयु से, कार्य से बल से, । ये तो सभी बढ़ रहे हैं। पशु पक्षी वनस्पति आदि आदि सब बढ़ते हैं। नहीं बढ़ते तो ज्ञान में जो ज्ञान स्वभावसिद्ध मक्खी को है, चूहे बिल्ले अथवा कुत्ते को है, वह अधिक नहीं होता। मनुष्य का बच्चा कोरा अज्ञानी पैदा होता है। उसे माता का ज्ञान है जन्म से मनुष्य को यह भी ज्ञान नहीं। पशु के बच्चे को चलने का ज्ञान होता है। उसे मां नहीं सिखाती और न उठाती। चाटने के बाद वह स्वयं उठता, फुदकता, और चाटता है। जिस भाषा को उसकी मां बोलती है, वह भी पैदा होते ही बोलने लग जाता है, उसको कोई सिखाता नहीं। जिस खाने को उसके माता पिता खाते हैं वही खाता है। परन्तु मनुष्य का बच्चा उसके विपरीत है, माता ही खाना, चलना, बैठना और चूसना सिखाती है। मनुष्य का बच्चा तो कोरा अज्ञानी है यहा तक कि इसे मल-मूत्र का भी ज्ञान नहीं। मनुष्यों ने परमाणु बम बनाये। मनुष्य ज्ञान की वृद्धि करता है, ज्ञान से जाना जाता है, ज्ञान से पूछा जाता है। पशु का ज्ञान जन्म से ही है इस वास्ते न वह उसे बढ़ा सकता है और न पूजा जाता है।

मनुष्य क्यों आया ?

तो इस सारी चर्चा का सारांश यह निकला कि मनुष्य इस संसार में इसलिये आया कि वह ज्ञान को बढ़ावे। कुम्हार थोड़ी मिट्टी से लोटा बना लेगा परन्तु घड़ा नहीं बना सकता, घड़े के लिये अधिक मिट्टी चाहिए। घड़ा बन जाय तो भी वह मिट्टी ही रहेगा। इसके विपरीत मनुष्य तो अद्‌भुत वस्तु बनाता है, किसके द्वारा, ज्ञान के द्वारा परन्तु फिर भी प्रश्न है कि वह स्वयं क्या बना ? उसको वह बना दे जो अन्तिम चीज है अन्तिम चीज तो परमात्मा है, परमात्मा न सही, तद्वत् सही। कहलाये तो सही। परमेश्वर का नाम पुरुष है परन्तु उसका भक्त महापुरुष विख्यात है। ईसा महापुरुष प्रसिद्ध है। आज जो पूजा शंकर और बुद्ध की है वह भगवान् को कहां ? मुसलमानों ने तो यहां तक कह दिया—

> 'खुदा खुद है सनाखां बने मुहम्मद।'
> अर्थात् परमात्मा स्वयं मुहम्मद को स्तुति करता है।

भगवान् क्या चाहता है ?

भगवान् को इसमें रोष नहीं। भगवान् वही चाहता है जो एक पिता चाहता है ! पुत्र बढ़ जाय, पिता का मन प्रसन्न होता है। भगवान् तो अपने भक्तों को बड़ा बनाना चाहता है, वह भक्तों को प्रत्येक स्थान पर उठाये फिरता है। ईसा को, दयानन्द को, किसने फैलाया ? वह तो एक स्थान पर रहे। इसलिये मनुष्य इतनी उन्नति करे कि वह मिट्टी से सोना बन जाय।

सामवेद ने कहा—

जातः परेण धर्मणा यत्सवृद्भिः सहाभुवः।
प्र १,दशतो ६, मं १०

तू मनुष्य (परेण धर्मणा) परम उकृष्ट तपस्या और सदाचार के बल से (जातः) उत्पन्न हुआ है (यत्) क्योंकि (सवृद्धिः) अपने साथ लगे हुए इन्द्रियों के साथ मिलकर (अभुवः) तू सब कार्य करने में समर्थ है।

वह मनुष्य मिट्टी से सोना बन जाय और उस परम देव के साथ एक हो जाय। लोहे को अग्नि में डालो, गरम होकर अग्नि समान चमकता है। हमारे अन्दर परमेश्वर ऐसे ही अन्दर बाहर है परन्तु हमारे मस्तिक, बुद्धि और ज्ञन में परमेश्वर न अन्दर है न बाहर। होता तो पाप क्यों करते ?

परमेश्वर तो सब स्थान में है परन्तु हमारे ज्ञान में नहीं। आत्मा को तो परमात्मा की प्राप्ति करनी है। वेद ने तो स्पष्ट कह दिया—

"बृहद्वयो हि भानवेऽर्चादेवायाग्नये"

सामा० प्र० १. द० नं० ८

(भानवे देवाय अग्नये) कान्ति स्वरूप देव अग्नि के लिये (बृहद् वयः) आयु का बड़ा भाग (अर्च) भक्ति रूप में दे दे।

इसलिये महर्षि दयानन्द ने कहा "सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।"

अतः मनुष्य को इतनी उन्नति करनी चाहिये कि प्रभु का ज्ञान प्राप्त हो जाय।

"सत्यं ज्ञानम् अनन्तं ब्रह्म।"

वास्तविक ज्ञान ही प्रभु का ज्ञान है जो अनन्त है और सच्चा है। भगवान ने तो चेतावनी दीः—

ये रूपाणि प्रतिमुञ्चमाना असुराः सन्तः स्वधया चरन्ति। परापुरो निपुरो ये भरन्त्यग्निष्टाल्लोकात्प्रणुदात्वस्मत्॥ यजु० २-३०

भावार्थ—जो मनुष्य अपने मन वचन और शरीर से झूठे आचरण करते हुए अन्याय से अन्य प्राणियों को पीड़ा देकर अपने सुख के लिए औरों के पदार्थों को ग्रहण कर लेते हैं ईश्वर उनको दुःखयुक्त करता और नीच योनियों में जन्म देता है कि वे अपने पापों को भोग के फिर भी मनुष्य देह के योग्य होते हैं। इस से सब मनुष्यों को योग्य है कि ऐसे दुष्ट मनुष्यों वा पापों से बचकर सदैव धर्म का ही सेवन किया करें।

इस से यह समझ लेना चाहिए कि वे मनुष्य अभागे है जो इस जन्म का मूल्य नहीं समझते, जिनके मन में और है, वाणी में और, कर्म में और है। भगवान् ने किसी भी प्राणी को मन देकर उसका विकास नहीं किया। वानर ने प्रभु को हाथ दिए, वह बड़ा नक्काल है पर अग्नि प्रकाशित नहीं कर सकता। उसके मस्तिष्क में ज्ञान ही नहीं आया कि वह आग जला सके। पशु ज्ञान में उन्नति नहीं कर सकता इसलिए उसका मन विकसित नहीं और न वाणी दी। पशु अपने स्वार्थ के बिना और कुछ प्रकट ही नहीं कर सकते और न अपनी जाति को कुछ सुना सकते है। लेकिन मनुष्य तो अनेकों वाणियां बोल सकता है। एक हाथ से कितने काम कर सकता है ?

प्रभु ने उसको तीन चीजें प्रदान की मन, वाणी और हाथ। अतः जो इन का दुरुपयोग करता है उसकी गति होगी नीच अर्थात् नीच योनियों को जायगा। जिसके मन में बुरा विचार है जो वाणी से दम्भ से बोलता है, मन और वाणी का जिसका मेल नहीं, वह सत्यवादी नहीं, वह दम्भी है। दम्भ मनुष्य का काम नहीं नीच योनियों का है। अतः वह नीच बनेगा। इसलिये कहा श्रेष्ठतम कर्म करो। इस पृथ्वी पर दो अरब मनुष्य होंगे, गिनें तो हम वास्तव में मनुष्य नहीं कहला सकते। यह तो भगवान् की कृपा है कि थोड़े पुण्य का अधिक फल देता है और बहुत पाप का थोड़ा फल देता है। इसलिये कहा कि कुछ लेना सीखो और देना सीखो। ऐसी चीज दें जिस पर लगे कुछ न और ऐसी लें जिससे सब कुछ मिल जाए। वेद में कहा—

नमस्कार को दें इस पर कुछ नहीं लगता। जिस पर कुछ नहीं लगता वह हम देते नहीं। लेने को ज्ञान लें जिससे तर जाएं। अतः कहा "**नमो वः पितरो रसाय**" ज्ञानी आए गृहस्थी झुके, नमस्कार की और कहा महाराज, भाड़ा चुकाओ। मैंने नमस्कार की है इसलिये कि मुझे वह वस्तु दो, जिससे मुझको रस आए। क्योंकि जिस पदार्थ में रस नहीं उसको भूल कर भी कोई मुंह नहीं लगायेगा। वसन्त ऋतु आती है, वनस्पतियों में रस आ जाता है। सब चीजें हरी-भरी हो जाती हैं। रस तो मध्यम में रहेगा।

रस कहां हैं ?

बाहर तो छिल्का ही रहेगा। बस, रस वहां है, जहां किसी ने छिपा दिया। परमात्मा की विद्या का नाम ब्रह्म-विद्या गुह्य-विद्या है अतः इस विद्या में रस है।

रस आत्मा में है कि वह छिपा हुआ है।

मन में रस है „ „ „ „।

धर्म में रस है „ „ „ „।

इसलिये गृहस्थी कहता है कि पितरो ! मुझे वह मार्ग, वह साधन बताओ जिस से मेरे जीवन में रस आ जाए। परन्तु आज दशा हो विपरीत है। जब साधु किसी गृहस्थी के द्वार पर आता है तो कोई गृहस्थी उस से इस मार्ग की बात ही नहीं पूछता। इसलिये मनुष्य को न मार्ग मिलता है न शान्ति आती है। जब तक वेद मर्यादा का पालन था, शान्ति थी। साधु भी कर्त्तव्यच्युत हो रहे हैं। वह भी तो गृहस्थी से क्षेम कुशल ही पूछते हैं। इन गृहस्थियों को विधि बताई क्या—पूछो ?

फिर कहा पूछो—'**नमो वः पितरो शोषाय**" ऐसा कौन सा साधन है जिस से हमारे पाप सूख जाएं जैसे ग्रीष्म ऋतु में वस्तुएं सूख जाती हैं। तीसरी बात कहो, "**नमो वः पितरो जीवाय**" बताओ हमारे अन्दर जीवन कैसे आये ? जैसे वर्षा सूखे खेत को हरा-भरा कर देती है। हम भी निर्जीव हो चुके हैं, अमृत वृष्टि करो, हमें आचार, विचार, व्यवहार के रहस्य को समझाओ। चौथी बात पूछते हैं, "**नमो वः पितरो स्वधायै**" —वर्षा समाप्त हो जाए तो किसान अन्न बोता है। अन्न वह जो हम को खा जाए और जिसको हम खा जाएं। अन्न कठोर है। बाजरा, जवार, मक्की आदि कठोर हैं। हमें बताओ वह कठोरता हमारे अन्दर क्या है ? जो हमको खा जाती है और जिसको हम खा जाते हैं। वह है अहङ्कार। अहङ्कारी मनुष्य कठोर होता है। अहङ्कार न हो शरीर को पालना कैसे हो, जैसे अन्न पालन करता है। परन्तु वह क्या वस्तु है जो इसको गला दे ? वह है ज्ञान। तो गृहस्थी पूछता है कि हमें ऐसा ज्ञान बताओ जिससे हम कठोर पापों को गला दें।

पांचवीं बात कहता है "**नम वः पितरो घोराय**" हमारे जो दुष्ट आचरण हैं, जैसे क्रोध जो सबसे बड़ा पाप है। क्रोध के कारण मनुष्य

बेसुध हो जाता है। मद्य पान करने वाले को इतना नशा नहीं होता जितना क्रोधी को होता है। लायलपुर के एक ग्राम की बात है कि एक व्यक्ति ने मालिया (भूमिकर) देना था, नम्बरदार मांगने आया, कहा तोसरे दिन ले जाना। दूसरे दिन वह शहर में गया आभूषण तुड़वाकर १००) का एक नोट ले आया और लाकर अपनो धर्म-पत्नो को दिया कि इसको रख दो। नम्बरदार जब आयेगा मालिया में देंगे। देवो ने कहीं रख दिया। घर में एक ही सन्तान थी छोटा सा बच्चा। बच्चे का स्वभाव है कि जो भो वस्तु देवे, मुंह में डाल देता है। माता-पिता घर में नहीं थे, बच्चे ने कागज देखा और मुंह में डाल दिया। नोट घुल कर टुकड़े-टुकड़े हो गया। दूसरे प्रातः को नम्बरदार आया, मांगा तो देवी ने तलाश शुरू को, देखा तो टुकड़े-टुकड़े हुआ पड़ा है। पुरुष को जो क्रोध आया बच्चे को उठा दोनों लातें चीर कर वध कर डाला। यह है चाण्डाल क्रोध का स्वरूप। क्रोध से बुद्धि नष्ट हो जाती है और "बुद्धिनाशात् प्रणश्यति" बुद्धिनाश से सर्वस्व नाश होता है अतः हे देवताओ, विद्वानो! हमें ऐसे साधन बताओ जिससे यह महान् पाप हमसे दूर हो जावे।

ऐसे हो आगे पूछा 'नमो वः पितरो मन्यवे' ऐसो बात बताओ कि जिससे ऐसा जादू चले कि पाप बाहर हो खड़ा रहे, हमारे अन्दर हो न आ सके।

जब उपदेश हो चुके शास्त्र मर्यादानुकूल पहले अपना काम कर लिया फिर भोजन वस्त्र आदि से सत्कार किया ताकि ऐसा न हो कि आशीर्वाद से हो निपटारा करके चलता बने। यदि साधु ने गृहस्थो को प्रसन्न कर दिया तो फिर गृहस्थो भो मन से सेवा करेगा। परन्तु आज तो हम भोजन खिलाते हैं किसो अन्य स्वार्थ अथवा यश कमाने के लिए।

एक बार किसो गृहस्थी ने एक साधु को भोजन खिलाया। साधु भोजन कर रहा था कि वृद्धा माता आगई, पुत्र को कहा, कहो मां। पुत्र ने कहा भोजन कर लें फिर कहेंगे। माता ने समझा कि यह तो मूर्ख है कहेगा नहीं। कहने लगो। साधु जो! यह तो नहीं कहता, कल इस को पेशो है। यह तो पकड़ा जायगा ऐसा आशीर्वाद दो कि छट जाय। साधु ने कहा कि चार आने की तूने रोटी खिलाई। यह व्यापार

है। तू क्या मांगता है? उठ खड़ा हुआ। इस में विष भरा हुआ है। आजकल तो यही हाल है। या प्रश्न करेंगे, सन्तान नहीं है। अब यदि साधु ने बता दिया तो उसको बहुत कुछ प्राप्ति हो जायगी। वेद ने तो मर्म की बात बताई। खाने-खिलाने में एक रहस्य है। हम ने न समझा। परम्परा से अतिथियों की सेवा चली आई। वास्तव में मनुष्य को अन्न के बिना कोई चीज बाँधने वाली नहीं है। बंध गया द्रोणाचार्य। बंध गया भीष्म पितामह। शरशय्या पर पड़ा है, उपदेश कर रहा है, द्रौपदी पूछती है, दादा! उस समय यह धर्म कहां था जब मेरा चीर हरण हुआ था? कहा, पुत्री! उस दुर्योधन का अन्न खाया था उसी से धर्म बंधा हुआ था, अब उसका प्रभाव रक्त द्वारा निकल चुका है तभी धर्म का मार्ग और नीति बता रहा हूं। इसलिये कहा संस्कार करो पितरों का अन्न से। कुत्तों को अन्न दो तो कुत्ते पूंछ हिलाते आयेंगे। घोड़ों को दो, हिनहिनाते आयेंगे। दीनों को दो आशीर्वाद देंगे। तो अन्न वास्तव में बांध देता है।

कैसे?

देखिये, अन्न खिलाया, मुख से उदर में गया तो आमाशय में रस बना, रक्त बना, मांस, अस्थि, मज्जा, मेद तथा वीर्य बना। बाल बना खाल बना। जिसने खिलाया शरीर उसका बन गया, २ चपातियों से मानो साधु को खरीद लिया। 'जिसका खाइये उसी का गाइये, खावे मुख लजावे आँख'—ये लोकोक्तियां प्रसिद्ध हैं। जैसा अन्न वैसा मन। जिस भाव से खिलाओगे वही भाव खाने वाले के हो जायेंगे। आत्मा अन्न के आश्रय है। बल आया आत्मा स्थिर है बलवान है। साधु भगवान् की तपस्या कर रहा है। भोजन बना तो भोजन खिलाने वाले को भी प्रसाद मिला। भोजन न बना तो खिलाने वाले को दण्ड मिला। तो मानो यह साधारण बात नहीं है। उसका सम्बन्ध स्थूल शरीर से ही नहीं, सूक्ष्म शरीर में जायगा। आगामी जन्म में भी उसकी सेवा करेगा। जिन लोगों ने दिखाने के भाव से अथवा दम्भ से खिलाया, वह स्वयं परतन्त्र हो जायगा। वह साधु भी परतन्त्र हो जायगा। परन्तु जो साधु अग्नि के समान है, वह सबको भस्म कर देता है। जो साधु गृहस्थी के अवगुणों को दूर कर देता है तो गृहस्थी का सुधार हो जायगा। जैसे—अग्नि अन्धकार को निकाल कर प्रकाश कर देती है, ऐसे साधु

गृहस्थो का खाकर उसका अज्ञान अवगुण दूर कर दे और प्रकाश कर दे तो उस साधु पर कोई ऋण नहीं रहता।

तो सब से महत्व की बात जो वेद ने कही है वह यह कि नमस्कार करो पितरों को, विद्वानों को, अतिथियों को, उनका भाड़ा चुका लो और भाड़ा भी ऐसा दे जिससे कोई ऋण साधु विद्वान् पर न रह जाय।

ईश्वर सब पर ऐसी कृपा करें कि पितृयज्ञ का वास्तविक रूप फिर से जीवित हो जाय। ओ३म् शम्।

अब, वेद असल में क्या है यह कोई केवल विद्वत्तासम्बन्धी ही प्रश्न नहीं है। यह अत्यधिक महत्त्व का प्रश्न है। यह महत्त्वशाली न केवल इसलिये है कि इससे दयानन्द के कार्य का ठीक-ठीक अन्दाजा लगाया जा सकेगा बल्कि इसलिए भी कि इससे हम अपने भूत के विषय में सज्ञान हो सकेंगे और अपने भविष्य के बनाने वाले प्रभावों का विनिश्चय कर सकेंगे। कोई राष्ट्र जो कुछ उसने होना है उस अपने भावी रूप में जब अपने को विकसित करता तो वह जो कुछ भूत काल में था और वर्तमान में है उसी के बल पर अपने को विकसित करता है और उसके इस विकास में सचेतनतया और अवचेतनतया ऐसे जांच-पड़ताल करने के समय आते है जबकि उसका राष्ट्रीय आत्मा उस सबका जिसे कि उसने भूतकाल में पाया है, उसका रूप परिवर्तन करता है, उसमें से कुछ को छोड़ता है और कुछ को नहीं।

ओ३म्

भगवान् और मन

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन्पूर्वमर्षत् ।
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति ॥

महानुभावो ! सच्ची बात को सुन तो सब कोई लेता है पर मानता कोई कोई है । वेद सच्ची बात कहता है । हमारी भलाई के लिये कहता है । परन्तु कौन नहीं मानता ? उत्तर होगा कि मन नहीं मानता । कारण कि मन की प्रतिस्पर्धा (मुकाबला) है परमात्मा के साथ, अपने अभिमान में नहीं मानता । जितनी वेद शास्त्र की मर्यादाएं हैं, शास्त्रों के उपदेश अथवा साहित्य है ये सब मनको दर्शाने के लिये हैं । जिसने जाना और माना वह मनुष्य बन गया और जिसने आचरण भी तदनुसार बना लिया वह देव बन गया । जिसने अपने आपको अर्पण कर दिया वह मुक्त हो गया । जिसने नहीं माना उसके लिये उपदेश है । हम नहीं मानते, अतः बार-बार सुनना पड़ता है और उपदेश रूप में सुनाना पड़ता है । वास्तव में मन का मुकाबला परमात्मा के साथ है । एक अलंकार में आप को बताता हूं । अलंकार को संवाद रूप में दर्शाया है :—

मन (परमात्मा से)—तेरे और मेरे मे क्या भेद है ? तू महाराजा है तो मैं छोटा राजा हूं, । तू अधिराज है, तो मैं His Highness हूं । मैं अपने राज के अन्दर राजा हूं, तू अपने के अन्दर ।

परमात्मा—मेरे अन्दर बड़ी शक्ति है । मैंने इस सृष्टि को बनाया और बिना कारण के बनाता हूं । मुझे किसी प्रकाश अथवा यन्त्र की आवश्यकता नहीं होती ! गर्भ की काल-कोठड़ी में बिना किसी प्रकाश

सहायता अथवा यन्त्र के जीव के लिये आकार घड़ता हूं।

मन—रात्रि को अन्धकार होता है। मैं चांदना करता हूं। स्वप्न में ही ७ मंजले गगनचुम्बी भवन खड़े कर देता हूं। जहाज चलाता हूं, सहस्रों यात्री उन में बिठा देता हूं। तू अपनी सृष्टि के लिये कितना विस्तृत आकाश और पृथिवी को घेर लेता है, मैं थोड़े से स्थान पर ही सब कुछ कर लेता हूं।

परमात्मा—(चकित हो कर) में अपनी सामर्थ्य से बनाता हूं। आदिम सृष्टि में जवान-जवान स्त्री-पुरुष पैदा करता हूं। मेरे पास कोई Design नहीं है।

मन—जैसे तेरे पास है वैसे मेरे पास है। तू केवल युवा सृष्टि रचता है और वह भी आदि में, मैं तो बूढ़े, बच्चे युवा सब ही रच लेता हूं। मैं मनुष्य को सींग लगा देता और कभी-कभी पशु भी बना देता हूं, विलक्षण आकार भी दे देता हूं, मानव और पाशविक देह इकट्ठी मिला देता हूं, तू तो नहीं कर सकता।

परमात्मा—तू तो बिना सुने-देखे नहीं बना सकता। (स्वप्न देखी अथवा सुनी हुई बात का आता है)।

मन—तू भी देखी बनाता है। आप ही वेद में कहते हैं, "सूर्या-चन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्"।

यह सुन कर भगवान् तो मानो मन को बनाकर फंदे में फंस गया। कुछ विलम्ब के पश्चात् कहा :—

परमात्मा—मैंने तो देवताओं को बनाया आकाश, सूर्य, चन्द्र, विद्युत् आदि। विद्युत् तथा शब्द की गति १८६००० मील प्रति सेकेण्ड रखी।

मन—सूर्य पृथिवी से ९॥ कोटि मील दूर है, सूर्य की किरण तो पृथिवी पर ८ मिनट में पहुंचे, परन्तु मैं तो पलक भर में वहां पहुंच जाता हूं। विद्युत् क्या करेगी ?

परमात्मा—अच्छा ! और देखिये। अंगारे के अन्दर मैंने वह

शक्ति रखी कि वह जले तो संसार को भस्म कर दे।

मन—द्वेष की अग्नि मेरे से जले तो राज्यों के राज्य विध्वंस कर दे। महाभारत के युद्ध में द्वेष की अग्नि ही तो थी।

परमात्मा—मेरी वायु चले तो वृक्षों को, मकानों को गिराकर परे फेंक दे।

मन—तेरी वायु तो जड़ को ही गिरायगी। मेरे काम रूपी वायु चले तो ऋषियों और तेरे भक्तों तक का पतन कर दे।

परमात्मा—मेरी पहुंच बड़ी है, जहाँ तू पहुंचता है वहाँ मैं पहले ही विराजमान हूं।

मन—मेरी भी कम नहीं।

परमात्मा—जिस पापी पर दया करता हूं, क्षण में धर्मात्मा बना देता हूं।

मन—मेरे ही द्वारा।

परन्तु मन अब झेंपने लगा और हार मानकर उसने कहा कि तू सर्व-व्यापक है, मैं एकदेशी हूं। तू सर्वज्ञ है, मैं अल्पज्ञानी हूं। तेरा मेरा क्या मुकाबला हो सकता है? मैं हारा, क्षमा करो भगवन्! आप जीते।

परमात्मा—मैं सर्वान्तर्यामी भी हूं। तू नहीं। रे मन! तू भूला हुआ है। जब तक यह नहीं जानता और मानता, तब तक तेरा कल्याण नहीं हो सकता और मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती। परमेश्वर सर्वव्यापक सर्वज्ञ और सर्व-अन्तर्यामी है। वह मन से भी वेगवान् है। जहां मन पहुँचे वहाँ वह पहले उपस्थित है। जो मनुष्य जानता है और मानता नहीं अथवा मानता है और जानता नहीं, वह मुक्ति को प्राप्त नहीं हो सकता। अत: जानना, मानना और आचरण में लाना परम आवश्यक है।

संवाद समाप्त हुआ। अब प्रश्न यह है कि यह ज्ञान कैसे हो?

मनु महाराज ने कहा :—

अद्भिर्गात्राणि शुद्धयन्ति मनः सत्येन शुद्धयति ।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेव शुद्धयति ॥

मन सत्य से शुद्ध होगा। जैसा विचार उत्पन्न हो, वैसा वाणी से प्रकट हो वैसा क्रियान्वित हो तो वह सत्य है। तभी मन शुद्ध होगा, तभी वह इस ज्ञान को प्राप्त कर सकेगा। आंखें इसको नहीं जान सकतीं। आंख देखने के बाद प्रेम करेगी अथवा घृणा ? मित्र से प्रेम, रिपु से घृणा होगी। कान भी सुनेगा तो प्रेम करेगा अथवा द्वेष। मधुर वचनों से प्रेम और कटु से अप्रेम होगा। यही नासिका तथा रसना इन्द्रिय का हाल है। स्वादिष्ट से प्रेम, कटु को थू-थू। कारण कि इन्द्रियों में विकार है। विकारी कैसे निर्विकार को प्राप्त हो। मनुष्य का शेष रहा मन, जब तक मन में विकार है, परमेश्वर के पास नहीं बैठ सकता। बड़े-बड़े विद्वान् जब भक्ति में बैठते हैं, मन साथ नहीं देता। सैनिक, कप्तान, मेजर, सूबेदार, दनदनाती तोपों का मुकाबला कर लेंगे, विद्युत् की कड़क सह लेंगे, परन्तु परमात्मा की भक्ति में नहीं बैठ सकते। इतना शूरवीर भी निर्बल है, इसलिये कि मन के अन्दर विकार है। विकारी मनुष्य बलवान् होता हुआ भी परमेश्वर की पूजा में नहीं बैठ सकता।

मसूरी में देखा कि कमजोर दुबले-पतले शरीरधारी पीठ पर कोयला उठाये पहाड़ी पर चढ़ रहे है, कहीं थक जाते हैं तो विश्राम ले लेते हैं पर उद्यमहीन नहीं होते। एक ऐसे हृष्ट-पुष्ट-काय देखे जो हाथ पसारे भिक्षा मांग रहा है। मैंने कहा कि जिन का शरीर सबल है उनका मन निर्बल है और जिनका शरीर कमजोर है उनका मन सबल है। किसी के आगे हाथ पसारने में उनको लज्जा आती है।

मन की निर्मलता तथा सबलता, हमारी श्रेष्ठता, जप-तप, दान यज्ञ, पूजा पर निभर है। मन के अन्दर यदि विकार नहीं तो जिस प्रकार अग्नि छोटी वस्तु को स्वीकार कर लेती और उसका विकास कर देती है, फैला देती है और यदि स्वीकार न करे तो पड़ी रहती है और कुण्ड में पड़ी गल-सड़ जाती है। इसी प्रकार जब तक परमेश्वर हमें स्वीकार न करे तो हमारा जीवन गल-सड़ जायेगा, परन्तु जिस समय परमेश्वर स्वीकार कर लेता है तो वह स्वयं उसका विकास कर देता अथवा फैला देता है।

सावधान मनुष्य का अच्छा गुण, कर्म, स्वभाव भी कभी-कभी उसके पतन का कारण बन जाता है अतः सावधान ! जरा विस्तार से विचारिये। मनुष्य को २ चीजें किसी शुभ कर्म के बदले में मिलीं, एक रूप अथवा सौन्दर्य और दूसरा मधुर स्वर। रूपवान् अपने रूप से और मधुर स्वर वाला अपने मधुर स्वर से संसार को आकर्षित कर लेता है जाति-पांति के बन्धनों को उलांघ कर भी। एक से आँख मोहित हुई और दूसरे से कान। कान से हम श्रवण करते हैं, आंख से साक्षात्। श्रवण पहली मंजिल है और साक्षात् अन्तिम मंजिल है। श्रवण को यदि हम साक्षात् न करें तो हमारी जीवन-यात्रा पूर्ण नहीं होती। हमने सुना, परमेश्वर आनन्ददाता, सुखदाता और दयालु है अब उसका साक्षात् करें। परमेश्वर मुक्ति का दाता है अब उसका साक्षात् करें। जो कुछ हम सुनते हैं उसको साक्षात् करने के लिये आंखें मिलीं। नासिका हमें प्राण के लिये मिली। प्राण आ जा रहा है। आंखें खोलनी पड़ती हैं। कान सोते समय बन्द हो जाते हैं। नासिका हरदम खुली है। आंख कान हमारे नहीं। वैज्ञानिकों ने लोहे के, रबड़ के आदमी बना दिये, विद्युत् द्वारा उनसे सर्व प्रकार की सेवायें भी कराईं, होटलों में थाली परोसना, भोजन, खिलाना, पानी पिलाना, मालिश कराना, गोली चलाना आदि कार्य कराए। जड़ पदार्थ में रिकार्ड भर दिये, सुई लगाई, ध्वनि निकलने लग पड़ी, राग-रंग होने लगे, परन्तु आंख और कान का काम वैज्ञानिक लोग न कर सके और न कर सकते हैं। यह रबड़ आदि की पुतलियां न देख सकती हैं, न सुन सकती है। हाथ का काम तो कर लिया।

आंख और कान आत्मा के कारण हैं।

इसलिये इनके द्वारा ज्ञान प्राप्त हो सकता है। एक समय आया। लायलपुर में एक बड़ा त्यागी तपस्वी सज्जन रहता था जिसने धारणा कर रखी थी कि आयु पर्यन्त ब्रह्मचारी रहूंगा। देश और जाति की सेवा करूंगा। एक समय वेदी पर उपस्थित होकर जब स्वर से कुछ बोला (ईश्वर कृपा से स्वर कोयल का सा था) श्रोता रो पड़े। एक देवी ने जो बहुत रूपवती थी, सुना और वह मोहित हो गई। जब अपने निवास-स्थान पर पहुंचा तो देवी ने वहां पहुंच कर प्रार्थना की कि मैं आप से विवाह करना चाहती हूं। उसने कहा मैं माता-पिता का इकलौता पुत्र हूं, सम्पत्तिशाली हूं, मेरी प्रतिज्ञा ब्रह्मचारी रहने की है।

परन्तु देवी स्वर पर मोहित हो चुकी थी और ब्रह्मचारी रूप पर लट्टू हो रहा था। शेक्सपीयर ने कहा है। Whoever loved that loved not at first sight ? ब्रह्मचारी रहने की प्रतिज्ञा जल विन्दु की तरह सूर्य की किरण के सम्मुख विलीन हो गई। विवाह हो गया। जतोई में एक वेश्या आई, उसको कोयल के नाम से लोग सम्बोधित करते थे। बड़े बड़े अफसर, रईस पतित हो गए।

भगवान् ने यह स्वर और सौन्दर्य दिया था किसी विशेष कर्म के बदले, अब उसके गिराने का कारण क्यों हो ? उसने पूर्व जन्म में कोई शुभ कर्म परमार्थ बुद्धि से किया तो उसे स्वर अथवा सौन्दर्य मिला, तो मान लेंगे कि उसके परमार्थ अथवा भक्ति में कोई विकार था। धनी होना दान का फल है, उसने दान तो किया था परन्तु अपनी इच्छानुसार नहीं, विवशता से अथवा भय अथवा लज्जा से किया था। बलात्कार हुआ अतः उसे धन तो मिला पर कृपण बना, क्योंकि दान मन से नहीं किया था। अब धन पाकर भी दुःखी है। रखवाली करता है आज्ञा नहीं कि अपने तथा परस्वार्थ के लिये उसे खर्च कर सके। इसी नियम के आधार पर जो भक्ति करता है परन्तु विकार सहित तो मानो वह भक्ति को दूषित कर रहा है।

दूषित कैसे होती है ! दो दोष हैं, एक है दिखावा (दम्भ) उत्तम कर्म किया फल मिलेगा। उस के बदले में मिला सौन्दर्य परन्तु चूंकि मेरे कर्म में दिखावा था। अतः सौन्दर्य मिला संसार को दिखाने के लिये और वही मेरे लिये पतित होने का कारण बना। कोयले का जितना भाग अग्नि में पड़ेगा, उतना ही चमकेगा, बाकी काला रहेगा। हाथ को कालिख लगेगी। मेरी भक्ति में कालिख थी सौन्दर्य तो मिला परन्तु दिखाने के लिये और पतित हो गया। दिखावा बाहर की वस्तु है अन्दर की वस्तु है कपट। कपट को प्रकट करने वाली है वाणी। छली व्यक्ति मधुर स्वर में अपने भावों को प्रकट करेगा। इसलिये कि दूसरा आदमी फंस जाय। विश्वास करके खिचा आए। भगवान् ने दे दिया स्वर। भक्ति तो थी परन्तु उसमें कपट था, इसलिये सुरीलेपन से पतन हो गया। अब दोनों सूरतों में सब से बड़ी ऊंची चीज भक्ति है और सबसे बड़ा शत्रु काम है। सौन्दर्य से काम के कारण पतन हो गया। स्वर से लोभ और काम के कारण पतन हो गया।

आज हमारी पूजा, यज्ञ, तप स्वीकार नहीं होता। त्रुटि को देखें, कहां है ! स्वभाव से हम नम्र हैं। परन्तु यदि मनुष्य दिखावे से नम्रता करता है तो दम्भ है। हम को फल तो मिलेगा परन्तु हमारा जीवन दम्भी रहेगा। लोग हमारे साथ दम्भ करेंगे। उसका जीवन लोगों के परमार्थ के लिये होगा परन्तु जब तक सचाई को दम्भ से बयान करेगा, लोग विश्वास न करेंगे और लोग भी दम्भ न करेंगे। मध्य में दम्भ होगा, लोग अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिये श्रद्धा दिखाते हुए सेवा करेंगे। जैसे बोवेंगे वैसा काटेंगे।

साधकों की चढ़ाई बड़ी कठिन है। क्योंकि सर्व-अन्तर्यामी भगवान् ने कहा कि धोखे में न रहे कि मेरा निज नाम तो ओ३म् है। बड़ा प्यारा नाम है। जो मेरी ओर सत्याचरण भाव से शरण लेता है उसकी, अन्तर्यामी रूप से अविद्या का विनाश करता हूं। प्रभु पूजा के भावों को जान लेता है कि प्रार्थना कहां से निकल रही है, प्राण से, मन से, बुद्धि से अथवा आत्मा से।

परमेश्वर की भक्ति नमस्कार के रूप में है। नमस्कार तीन प्रकार का है —

(१) भौतिक—बाहर, माथा टेक दिया। लगाया उठाया ही नहीं। ऐसे बहुत व्यक्ति हैं जो मसजिद मन्दिर में जाते हैं, सिर उठाते ही नहीं ऐसा नमस्कार दिल से है परन्तु बाहर से है।

(२) दैविक—यह वह नमस्कार है कि जब नमस्कार करने वाला नमस्करणीय के सामने जाता है, आंखों में प्रेम की नमी आ जाती है।

(३) आध्यात्मिक—जब नमस्कार करने वाला प्रेमी के पास जाता है, सब बातें भूल जाती हैं। एक तार हो जाता है। पुत्र परिवार आदि सब का ख्याल भूल जाता है !

भगवान् को जिन्होंने चित्त में एक बार देख लिया, अन्दर बांध लिया, बिठा दिया। एक चित्त है, नमस्कार की आवश्यकता ही नहीं, वह अन्दर ही अन्दर नमस्कार कर रहा है।

भौतिक रूप से हाथ जोड़ वन्दना करने तथा सिर झुकाते हैं।

दैविक में प्रार्थना हो रही है, आंखें तर ही तर हैं।

हमारा नमस्कार प्राय: व्यावहारिक अथवा शिष्टाचार पूर्वक है। ऐसा नमस्कार स्वीकार नहीं होता। जहां नमस्कार में पूर्ण श्रद्धा है, मन से आत्मा से नमस्कार है तो प्रभु उसे स्वीकार करते हैं। अत: वेद ने, यजु ४०-१७ में, बतलाया :—

"जो मेरी (परमात्मा की) प्रेम और सत्याचरण भाव से शरण लेता उसकी अन्तर्यामी रूप से मैं अविद्या का विनाश कर उसके आत्मा को प्रकाश करके शुभ गुण कर्म स्वभाव वाला कर सत्यस्वरूप का आवरण स्थिर कर योग से हुए विज्ञान को दे और सब दु:खों से अलग करके मोक्ष-सुख को प्राप्त कराता हूं।"

इस मन्त्र में अपना स्वरूप तथा निज नाम (ओ३म्) बता कर सिद्धि और फल बताया।

अब प्रश्न है योग से विज्ञान कैसे सिद्ध हो?

उत्तर—इसका विज्ञान शुद्ध मन से होता है जिसके लिए तीन बातें आवश्यक हैं :—

(१) धर्मात्मा हो (२) विद्वान् हो (३) योगी हो। तीनों गुण इकट्ठे हैं। धर्मात्मा यदि विद्वान् न हो वह ईश्वर, जीव, प्रकृति जो जुदा जुदा हैं, उनका वास्तविक ज्ञान कैसे प्राप्त करेगा? आत्मा जुदा है, कर्म करने में स्वतन्त्र है परन्तु कर्मफलदाता और है जो शुभाशुभ कर्मों का फल अवश्य भुगतवाता है। अब यदि धर्मात्मा भी हो, विद्वान् भी हो और योगी न हो तो भी मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकता। वैसे तो सब भोगी योगी हैं। योग सबके लिए है। "योगश्चित्त वृत्ति निरोध:" चित्त की वृत्तियों के निरोध का नाम योग है। दुकानदार, सुनार, चोर सब एक चित्त होकर भोग भोग रहे हैं तो मानो, सारी दुनियां योगी है। परन्तु वास्तविक योगी तो वह है कि जो इस आत्मा का परमात्मा से मिलाप कर दे, जिसकी चिति शक्ति भगवान् में लग जाय। यही योगी परमात्मा का साक्षात् कर सकता है अन्य को साक्षात् नहीं होता।

अत: हमें यत्न करना चाहिये कि हम किसी मञ्जिल पर चढ़

जाएं। प्रथम श्रेणी में दाखिल भी हो जाएं कभी तो दूसरी श्रेणीं में चढ़ ही जाएंगे। प्रथम में ही स्वीकार हो जाएं। दिखावा और कपट को छोड़ दें।

छोटे से छोटा कार्य भी जिसमें दिखावा और कपट नहीं, वह स्वीकार हो जायगा। सदा अपने कामों की पड़ताल करते रहें, यदि हम संसार के लिए बोलते और करते हैं तो यह दिखावा है, स्वीकार नहीं होगा। इस स्थल पर एक दृष्टान्त देकर इस बात को अधिक स्पष्ट करना चाहता हूँ —

कहते हैं तानसेन सम्राट् अकबर के समय बड़ा रागी था। अकबर को राग सुनाया करता था, अकबर सुन २ कर दंग रह जाता। एक दिन अकबर ने तानसेन से कहा, तानसेन! तेरा राग तो हमने सुना, तेरे गुरु का भी सुनते जिसने तुम्हें यह राग सिखाया है। तानसेन अकबर को साथ लेकर गुरु की कुटिया पर गया, अकबर को बाहर बिठा दिया, आप कुटिया के अन्दर चला गया। देखा तो गुरु जी समाधिस्थ हैं। अब क्या करे, कैसे करे, एक सूझ आ गई। वीणा उठाई और रागिनी अलापने लगा, स्वर को तनिक बेस्वर कर दिया। गुरु ने सुना और झट आंखें खोलकर कहा, अरे मूर्ख! यह क्या करता है, नाम को लजवाता है, इधर ला। वीणा ले ली। गुरु ने राग अलापना शुरू किया, वही राग जो तानसेन प्रायः अकबर को सुनाया करता था, ऐसी लय में गाया, कि अकबर जो बाहिर बैठा सुन रहा था, मूर्छित होकर गिर पड़ा। राग समाप्त हुआ। तानसेन गुरु की आज्ञा लेकर कुटिया के बाहर निकला तो अकबर को मूर्छित पाया। होश में लाया। अकबर ने पूछा, तानसेन! यही राग बीसियों बार तुझ से सुना पर मूर्छित कभी नहीं हुआ, आज पता नहीं तेरे गुरु ने क्या जादू चलाया कि सुध-बुध न रही। तानसेन ने कहा कि सम्राट्! मैं गाता था तुम्हें प्रसन्न करने के लिये और गुरु ने गाया परमेश्वर को खुश करने के लिए, तभी तेरी यह अवस्था हुई। उसका राग स्वामी के लिये था और वह इसमें तन्मय हो गया, स्वयं तन्मय हुआ, श्रोता की भी सुध-बुध जाती रही।

अतः जब तक मेरी प्रत्येक क्रिया परमेश्वर के लिए नहीं, मेरा किया कराया सब विनष्ट है। घर में मैं रोटी खाता हूँ, यह मेरा दिखावा नहीं, परन्तु यदि उसी घर में औरों को रोटी खिलाऊं तो यह दिखावा हो जाता

है, इसलिए सावधान हो जाएं, विकार को समझें कहां है ? मैंने उपदेश किया और अन्त में झांकने लगा कि जनता को कैसे पसन्द आया। बीज बो दिया और उखेड़ २ कर देखने लगा कि उगा है कि नहीं।

परमेश्वर करे कि हम इस मर्म को समझें और वेद की आज्ञाओं का पालन करते हुए जीवन को सफल बना सकें। ओ३म् शम्।

वेदोपदेश

ओं देवेभ्यो हि प्रथमं यज्ञियेभ्यो ऽमृतत्वं सुवसि भागमुत्तमम्। आदिद्दामानं सवितर्व्यूर्णुषे अनूचीना जीविता मानुषेभ्यः। यजु ३३-५४।

वेद में सब विद्यायें प्रभु ने धर दी हैं। जैसे भूखे को रोटी चाहिये, वैसे मनुष्य के ज्ञान के लिए इस मन्त्र में युद्धविद्या, कृषि, शिल्प-विद्याओं का वर्णन है। यह मन्त्र याज्ञिकों के लिए है। मेरा इष्ट भी यज्ञ था। गायत्री जाप और यज्ञ से मेरी यह धारणायें बनी हैं। यह सिद्ध करने वाले देव कहलाते हैं। वेदवेत्ताओं में याज्ञिक कितने हैं ? कर्त्तव्य समझ कर जो काम किया जावे वह यज्ञ कहलाता है। यज्ञ के बहुत अर्थ हैं। वेदों का यज्ञ महान् यज्ञ है। सूर्य चन्द्रादि देवता प्रभु-कार्य कर रहे हैं। जो परमेश्वर का कार्य करे, वह देव है। बिना मुआविजे के हमारे लिए प्रभु प्रकाश और वायु प्रदान कर रहे हैं। अन्न-जल, वायु को शुद्ध करना है। मनुष्य की चीजें हैं इस यज्ञ का काम तीनों इन कामों को जो करता है वह देव कहलाता है।

हमारे अन्दर आत्मा विद्यमान है। यदि आत्मा से हमारा कल्याण नहीं हुआ तो यह सूर्यादि के समान जड़ देवता बनेगा। अग्नि जड़ है। उसमें डाले पदार्थ भी जड़ हैं। पर हमारी भावना चेतन है। हमारा उद्देश्य तो चेतन (आत्मा) को चेतन (प्रभु) से मिलाना है। वही सच्चा देव है। मोक्ष-भाव से वह सच्चा सुख देता है। हम सोते हैं पर जागते नहीं। प्राण आ जा रहा है। हमारी आत्मा जागती रहे। ज्ञान बिना आत्मा चेतन नहीं होती। जागती हुई आत्मा मोक्ष को प्राप्त करती है। इस संसार का सुख तथा पारलौकिक सुख प्रभु की देन है। वह भूर्भुवः स्वः एक है। शुद्ध प्राणदाता-दुःखविनाशक और सुखस्वरूप है।

जो इन तीन कामों को करते हैं वे देव कहलाते हैं। मनुष्य संसार में रहते हुए अपने परिवार को जीवन-दान दुःख-विनाश तथा सुख देता है। परन्तु यह यज्ञ नहीं है। संसार के प्रति निःस्वार्थ भावना से यह कार्य यज्ञ कहलाते हैं। इनके करने से याज्ञिक विष्णु समान बन जाता है। वह सम्पूर्ण संसार में फैल जाता है।

यज्ञ सिद्धि का अर्थ है—यज्ञ का वास्तविक स्वरूप। यह हमारे में आ जावे अग्नि का ताप तो आयेगा। पर प्रकाश भी आयेगा। आत्मा जगने पर प्रकाश अन्दर टिकता है। हमारे अन्दर अज्ञान-रात्रि है। वहां प्रकाश का क्या काम ? प्रकाश में अन्धकार का क्या काम ?

यज्ञ के रूप को आत्मा में धारण करने वाला ही यज्ञ रूप को जान सकता है, आग समिधा की कठोरता तथा उसके आर्द्रत्व को नष्ट कर देती है। इसी प्रकार यज्ञ हमारे अहंकार को नष्ट कर देता है। ऐसा देव मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। हम अपनी आत्मा को समिधा बना दें, प्रभु के अर्पण कर दें, तो कठोरता रूप अहंकार के नष्ट होने पर प्रकाश मलेगा।

प्रत्येक एक दूसरे को अधीन करना चाहता है। राजा प्रजा को, मित्र मित्र को। बली पशु निर्बल पशु को। पर प्रभु के स्वभाव से यह बाहर है कि कोई मेरे वश में हो।

अदीनाः स्याम शरदः शतम्। प्रभु प्रेम के भूखे हैं। भगवान् ने सारे संसार को हमारे अर्पण कर दिया। अपने आपको हमारे समर्पण कर दिया। मां सन्तान को दीन बनाना नहीं चाहती। वह मंगलमयी मां है। प्रभु अपनी अमृत-भक्ति का रस देता है। मां जैसे स्तन पिलाती है। हमारी आत्मा में ससार के विषयों से कठोरता आ गई है। इसे प्रभु के अपण करो। यह चीज मोक्ष वालों के लिये है।

यजुर्वेद अध्याय ३३ मन्त्र ५२ के भावार्थ में ऋषि लिखते हैं कि जैसा सुख अपने लिये चाहते हो वैसा दूसरों के लिये चाहो। यह आसान रास्ता है। जैसा अपने लिये सुख पहुंचाते हो वैसा दूसरों को भी पहुंचाओ। सर्वे भवन्तु सुखिनः हम यह बोलते तो हैं पर हमारे अमल में नहीं है। निष्काम सुख तो मातृभाव में है। इसीलिये इनका नाम "देवी" रक्खा।

इन देवियों के हृदय में भगवान् ने अपने आपको बिठा दिया है। स्तन में माता के भगवान् स्वय हैं। ऐसे वह योगियों के हृदय में भी हैं।

जो विद्वान् हैं जनता को अधर्माचरण से पृथक् करके स्वयं भी उसका अनुसरण करें। सदा अपने को अधर्माचरण से पृथक् रक्खें, यह उनका यज्ञ है। न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः प्रभु का आकार तो है नहीं उसका कैसे स्मरण करें ?

पुत्र माता पिता की सेवा कर रहा है। उससे उसके भाव का पता लग जाता है। वह परमेश्वर है। उसका आशीर्वाद पहले है। निराकारोपासक ओ३म् का जप कर रहा है। गायत्री जप कर रहा है। जप पूज करने वालों को आशीर्वाद मिलना चाहिये। मगर नहीं मिलता उसका कारण यह है कि जड़ में ताकत नहीं कि वह किसी को आशीर्वाद दे। चेतन जड़ को आशीर्वाद नहीं देता। इसलिए जो लोग जड़ की उपासना करते हैं, वह भी आशीर्वाद से वंचित रहते हैं और जो चेतन की उपासना करते हैं पर जड़ बुद्धि से उन्हें भी आशीर्वाद नहीं मिलता।

आशीर्वाद एक Lift है, जो ऊपर ले जाती है। जाप करने वालों को भी आशीर्वाद नहीं मिला। उन्होंने चेतनदेव समझा तो है, पर अपने को चेतन नहीं समझा। चेतन का जप चेतन करे। आशीर्वाद तुरन्त मिलता है। वह महद्यशः है। आत्मा परमात्मा दोनों की खुराक यश है। आत्मा को प्रभु से खुराक मिलती है।

प्रभु की आज्ञा पालन करना उसका नाम स्मरण करना है : यह चेतन उपासना है। मैंने प्रभु को भूः प्राणदाता कहा। प्रभु सदा प्राण दे रहे हैं। मैं दूसरों के दुःख को दूर करूं। सुख पहुंचाऊं। स्वार्थ मैं तब करता हूं, जब मैं खुद को बढ़ाना चाहता हूं। स्वार्थ रहित होने पर प्रभु आज्ञा का पालन करना आसान हो जाता है। यज्ञ स्वार्थ त्याग सिखाता है। प्रभु का डर सदा सामने रहे तो हम पाप करेंगे ही नहीं।

भर्गः का ध्यान करें। उसका फल है प्रभु का अनुग्रह, हमारे पाप नष्ट हो जायेंगे। अनुग्रह का फल है इन्द्रियों का निग्रह। यह हमारी उपासना का फल है। कृपा तो हमारे कर्मों का फल है पर अनुग्रह हमारी उपासना का फल है। वह दीन नहीं होने देता। उसकी महा कृपा है। यही उसकी उपासना है।

अध्यात्म-सुधा

ओ३म् वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तं शरीरम् ओ३म् क्रतो स्मर। क्लिबे स्मर कृतं स्मर। यजु० ४०-१५।

एक बार सब सस्वर गायत्री जप करें। अपने खड़ताल, ढोलक, बाजा इत्यादि को भी साथ मिलाएं। सब ने साज बजाये, गीत गाया और एक स्वर से रस आया। यह रस ऋषियों को तार गया।

क्या ढोलक और बाजा को भी प्रभु के दर्शन हुए ? नहीं। प्रभु-पूजा में रस तो अवश्य आता है। रस तो वह है जिसके आने से संसार के रस फीके लगें। अगर उसके मुकाबले में कोई और रस मीठा लगे, तो प्रभु नहीं मिलेगा, चाहे उस प्रकार बजाते, गाते जन्म भी बीत जाएं कारण—बाजा और ढोलक में भावना नहीं। जब मनुष्य बिना भावना के उपासना करता है, तो वह भी ऐसा ही है जैसे ढोलक, बाजा के स्वर। भावना का स्थान हृदय है।

कोयल मीठा बोलती है, पर वह मुक्त नहीं हुई। वीणा के स्वर हृत्तन्त्री को मोहित करने वाले होते हैं, पर उसे प्रभु के दर्शन नहीं हुए। यह जड़ है, बजाने वाला चेतन है।

कोयल स्वयं बोल रही थी, उसमें भी भावना न थी। मत समझे कोई कि सदा भावना जागृत रहती है। मनुष्य वही है, जो हृदय की भावना के साथ कर्म करे। भावना यदि ज्ञान के विपरीत हो, तो वह फलीभूत नहीं होती।

सभी जप-तप-दान करते हैं। योग समाधि भी लगाते हैं। भावना तो साथ होती है, पर ज्ञान के विरुद्ध होती है। ज्ञान दो प्रकार का है, एक शुद्ध ज्ञान, दूसरा अशुद्ध ज्ञान। शुद्ध ज्ञान का असर आत्मा पर पड़ता है। यदि उस राग का सअर आत्मा पर नहीं पड़ा, तो वह भी कोयल-राग की तरह है। मीठा तो अवश्य लगेगा, पर प्रभाव-शून्य होगा।

जीवन का ध्येय जीवन-प्राप्ति है, न कि मोक्ष की प्राप्ति। यदि हमारी क्रियायें चेतनता की ओर ले जाती हैं, तो वे जीवन-लाभ देने वाली हैं। पशु की मृत्यु शरीर से होती है, पर मनुष्य की मृत्यु अपयश से होती

है। उसका जो कार्य यश फैलाता है, समझो, उसे जीवन-दान मिल रहा है।

तभी वेद ने कहा :—ओ३म् क्रतो स्मर। कृतं स्मर।

यदि यश का स्थान कान है, तो समझो वह दीन गुलाम है। यदि स्थान हृदय की गुफा में प्रभु है तो वह अमर हो जायेगा।

संसार में दीन बहुत हैं, एक तो लूले लंगड़े है, दूसरे अन्धे और बहरे हैं। एक और बड़ा दीन है, जिसके पास बुद्धि और धन नहीं। इससे महादीन वह है, जो कान का दीन है। धनी और दानी कान के दीन हैं, इनका सारा कार्य जड़वत् होता है, इससे अन्त:करण शुद्ध नहीं होगा।

दूसरा दीन जिह्वा का है। विद्वान् मनुष्य अपने कहे उपदेश की वाहवाही लूटना चाहता है, यह भी दीन है और उसकी सारी क्रिया जड़वत् है। उसी प्रकार आंख, नाक के दीन हैं। यह सूरत परस्त और ऐयाश हैं। चाहे यह ज्ञानी और धनी भी क्यों न हों। ये कार्य आत्मा को उज्ज्वल नहीं करते।

यश के कार्यों को यज्ञ तो कहते हैं, पर वह द्रव्य-यज्ञ हैं। इनसे संसार का कल्याण तो होगा।

इनके साथ यदि भावना सम्मिलित हो, तो यज्ञ कुछ कर देगा। चार चीजें हैं। दो अर्पण की, दो त्याग की। अर्पण तो घी, समिधा सामग्री को किया। त्याग नहीं किया। त्याग करता है तब, जब प्रेम हो, घृणा न हो। यदि यज्ञ में त्याग प्रेम और ज्ञान सहित है, तो आत्मा उज्ज्वल हो जावेगी। यदि ज्ञान सहित नहीं, तो रुकावट उत्पन्न होगी, क्योंकि यज्ञ और प्रेम एक ही चीज हैं। स्वार्थ और वैर-विरोध का त्याग करें।

अर्पण करें अहम् को, कठोरता को। कठोरता गलने की चीज है। जब बड़ी शक्ति के आगे अर्पण हो जायें, तो कठोरता स्वयं गल जायेगी, पत्थर की तरह पिस जायेगी।

अहंकार भी अर्पण करने की चीज है। जब मैंने कोई बुराई की, तो अहंकार ने डेरा लगाया, यदि प्रभु के सामने अर्पण हो जायें तो सदा

के लिये जीवित हो जायें। ऐसे ही जो प्रेम से, ज्ञान से अहम् को अर्पण करता है, तो वह मुक्त हो जाता है।

ओ३म् शम !

आसक्ति रहित कर्म

ओं कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत${}^{\circ}$समाः। एवं त्वयि नान्यथेतो-ऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥ यजु ४० ।२।

यह मन्त्र आदेश करता है कि तुम्हारा जीवन किसी विशेष उद्देश्य को लिये हुआ है। कर्म के बिना मनुष्य नहीं रहता। पशु इन्द्रियों से काम करते हैं। वह उनका स्वाभाविक काम है। पशु आँख से देखता है। मनुष्य आंख से देखता है, बुलाता है और प्रेम भी कर लेता है। मां बच्चे को कटु दृष्टि से भी देखती है और प्रेम भरी से भी। एक से तो वह कांप उठता है पर दूसरी से मुस्करा पड़ता है। पशुओं ने देखा या मैंने, यह हमारा स्वाभाविक सिद्ध कार्य है। पर इङ्गित करने बुलाने में मन तथा ज्ञान साथ था, विशेष कर्म किया। दोनों में भेद यह हुआ कि मन के संकल्प से कार्य मनुष्य करता है। उससे हमारा कल्याण है। यदि भाव अर्पित हो जावे तो अपना-पराया सब का लाभ हो। ऐसा कर्म करो जो छुटकारे का कर्म हो।

माँ बच्चे को दूध पिलाती है। माँ बंधी है बच्चे के साथ, दांत दिये तो माँ बच्चे को बन्धन से छुड़ाती है। प्रेम घटता तो नहीं पर बच्चे के हित के लिए दूध छुड़ा देती है। परमेश्वर का नियम है कि संसार के सब मनुष्य संसार की भलाई करते हुए उस बन्धन से मुक्त हों। बच्चा गोद में असमर्थ है, प्रभु ने बल उत्पन्न कर दिया अन्न के द्वारा। मां बच्चे को पंगूड़े में बिठाती है, गोद का बन्धन उठ गया। हित के लिये पृथक् किया। उसी प्रकार बच्चे का सारा जीवन बन्धन में है। माता उसे छुड़ाती है, मृत्यु बन्धनों को काटती है। संसार में जो बखेड़े हैं उनमें लोग आसक्त हैं। मृत्यु हुई छूट गया। बन्धनों से स्वतन्त्र हो गया। यह भी स्वाभाविक है जिसे हम मानते नहीं। हमारी वीरता इसी में है कि हम कर्म करते हुए जियें पर बन्धनों से मुक्त हों।

बच्चा होनहार हुआ २० वर्ष में मर गया पर मुक्त तो नहीं हुआ। जो माता-पिता या गुरु से सीखा उसको फैलाता, पर मरने से वह कुछ कर्म न कर सका। उसे आयु १०० वर्ष की चाहिये ताकि भूयश्च शरदः शतात्।

नौकर और पशु छुटकारा चाहते हैं, कहते हैं कि दिन शीघ्र समाप्त होवें। जब मनुष्य अपने को मालिक समझ लेता है, तब कहता है दिन बड़ा हो मेरी आयु बड़ी हो ताकि मैं अधिक काम कर सकूँ।

संसार के व्यवहारों में पिता थोड़ी आयु में सब के सब काम पूरे हुए देखने चाहता है। मैं ऐसे काम करूं जिससे मैं आवागमन के चक्र में न फंसूं।

गृहस्थी सबका पालन करता है। पशु पक्षी अतिथि साधु अभ्यागत की सेवा करता है। ब्रह्मचारी ने २५ वर्ष पढ़ना है। वानप्रस्थी ने पढ़ाना है। संन्यासी ने उपदेश देना है। पर गृहस्थी की आयु २५ वर्ष है। काम बहुत है। बूढ़ा चाहता है कि पुत्र पौत्र को देखूं विवाह भी देख लूं। इन २५ वर्षों में गृहस्थी ऐसे कर्म करे कि सब चाहना मिट जावें। वेद ने कहा "न कर्म लिप्यते नरे।"

मोह, ममता, आसक्ति ये ही तीनों बन्धन के कारण हैं। हमारा जीवन सत्य को अपनाये बिना सिद्धि नहीं प्राप्त कर सकता। जब तक किसी व्यक्ति या पदार्थ के साथ ममत्व बुद्धि है तब तक वह असत्य है। आसक्ति (attachment) का लगाव ही दुःखदायी है। इन्द्रियों को वश में रखते हुए मन को एक निरासक्त अवस्था में सदा स्वस्थ रखना सत्य है।

नर=न रमते इति, जो विषय में आसक्त न हो। प्रभु ने हमें नर बनाया इसलिये हम आसक्त न हों। मां डायन तो है नहीं। पर अन्न खिलाना चाहती है। बन्धन से वह हटाना चाहती है। स्त्री-पुत्र परिवार महल अटारी में रहे, रमण भी करे पर लिप्त न हो।

चिड़िया पक्षी को चौंच में देती है। पंख निकलने पर लगाव छोड़ देती है। गाय मालिक के घर में २० वर्ष से है। मालिक को हानि हो, खुरली टूट जाये पर उसे उससे कोई आसक्ति (attachment) नहीं। हां

केवल उस अवस्था में जब कि वह घास खा रही है, कोई और पशु आये, या तो उसे मारेगी या हट कर खड़ी हो जायेगी। और जब वह गर्भवती हो तब पहले बछड़े से भी ममता हटा देती है।

नर के लिये आदेश है कर्म कर "न कर्म लिप्यते नरे"। आसक्त न हो। २५ साल के हो कहे जाओ। कर्म करो पर आसक्त न हो। यह तब होता है, जब वह ध्यानावस्थित हो जाता है। प्रभु तब जिम्मेवारी लेता है जब हम उसके अर्पण हो जाएं। नर को पापों से पृथक् कर देता है।

प्रश्न होता है कि गृहस्थी आसक्ति न रक्खे तो काम कैसे चले ?

उत्तर एक साधन है, प्रभु को संसार में रह जीत ले पवित्र रहे। उसके लिये प्रेम आवश्यक है। यह अपनी चीज है। संन्यासी वानप्रस्थ ब्रह्मचारी का सब के साथ प्रेम न हो सकेगा। पर एक गृहस्थी की पशु-पक्षी कीट-पतंग सब के साथ प्रेम और हित की भावना होगी। गठबन्धन ही प्रेम को उत्पन्न करने वाला हो यह साधन है साध्य का। प्रेम स्वाभाविक है। यह जीवात्मा का आवश्यक तत्व है। दुई मिटने पर एक हो जाते हैं। यह पापों का नाश करता है। पापवृत्ति तब नहीं उठती जब प्रेम हो। संशय रहित विशुद्ध सत्य का नाम प्रेम है। उसमें दगा छल नहीं होता। कोई पाप नहीं होता। लज्जा भय शङ्का का स्थान नहीं होता।

अबोध बच्चे के पिता की दाढ़ी हिलाने पर, छाती पर ऊधम् मचाने पर, मूत्र करने पर, पिता सहन कर लेता है। क्रोध मोह अहङ्कार नहीं रहता। प्रेम के होने से तारतम्य हो जाता है। यह गुण गृहस्थों के पास है। इससे जिसको चाहे जीत सकता है। प्रेम नाम है निष्काम कर्म का।

हाथ में भोजन ले जाने से और किसी को खिलाने से आदर नहीं होता। पर ढांप कर ले जाने से प्रेम प्रकट होता है। जैसे मां बच्चे को प्रेम से खिलाती है ऐसे ही भगवान् अपने भक्त को आदर और प्रेम से खिलाते हैं। कहता है—"अहमन्नादोऽहमन्नादोऽहमन्नादः।" प्रभु कहते हैं मैं अन्न हूं। यह प्रेम है। शुद्ध प्रेम के होते ही पति पत्नी, माता पुत्र में द्वैध भाव नहीं रहता। पाप नहीं होता। इसके न होने से गृहस्थी सैकड़ों पाप करता है। जब वह वानप्रस्थी व संन्यासी बनेगा तो उस गुण से उसने प्रभु को मानो खरीदा हुआ होगा।

हम कर्म क्यों करते हैं ? अपने अहम् मम को प्रकट करने के लिये। कर्म करने से कर्म-कर्त्ता की प्रकृति जानी जाती है। यज्ञ में सामान रख दिया, आहुति आप देते हैं पर ध्यान अन्यत्र होने से आहुति बाहर गिर गई। तो इससे कर्म कर्ता की प्रकृति का पता लग जाता है। यह कर्म करने से ही प्रतीत होता है। कर्म से ही अहम् प्रतीत होता है। इदमग्नये इदन्न मम मेरे कृत कर्म से ही प्रकट हो कि मुझ में मम भाव नहीं। अर्पण भाव हो। यह प्रेम अर्पण सहित कर्म निष्काम कर्म होता है। कर्म ही प्रेम को प्रकट करता है।

भगवान् करें जो मैं यह लिख रहा हूं और कह रहा हूं, आप की और मेरी समझ में आ जावे। तो मेरा आपका बेड़ा पार हो।

ओ३म् शम्।

संकलनकर्ता—लखपति शास्त्री बी० ए०
विद्यावाचस्पति

कलियुग का ऋषि सत्य का प्रकाशक और प्रचारक

दयानन्द

वेद जो ईश्वरीय ज्ञान है वह है तो अनादि काल से। इसलिये सत्यता भी अनादि काल से है। परन्तु इस कलि काल में यह ज्ञान और सत्यता लुप्त सी हो गई थी। यह नहीं कि वेद संसार में न थे अथवा इस का मन्त्र पाठ करने वाले न थे या इनको पढ़ने वाला कोई न था। वेद भी थे और पाठक भी ऐसे ऐसे थे जो यजुर्वेदी, ऋग्वेदी, सामवेदी, त्रिवेदी, चतुर्वेदी कहलाने वाले थे जिन्हें समस्त वेद स्वर सहित कंठस्थ थे। वे नित्य प्रति बड़ी श्रद्धा और मान के साथ पाठ करते थे यहाँ तक कि चौबीस घण्टे जब तक उन्हें निद्रा न आती पाठ करते रहते। खान पान के समय के अतिरिक्त जब वे चलते फिरते थे तब भी पाठ करते जाते और इतना आदर सम्मान वेदों का करते थे कि नंगे पांव चलते, चमड़े का जूता पहन कर वेद का उच्चारण, मुख से बोलना, वेद का निरादर तथा पाप समझते थे। परन्तु वेद ज्ञान और सच्चाई निर्जीव सी हो गई थी। चुनाचे ऐसा समय आ गया था कि जब अंग्रेजों का राज्य आया और ईसाई मत के प्रचारार्थ

प्रचारक योरुप आदि देशों से आए तो उन्होंने कलकत्ता में आर्य जाति के पूर्वज भगवान् राम और कृष्ण के चरित्र की जनता में चित्रों तथा जादू के लालटेन (magic lantern) के द्वारा दिखा दिखा ऐसी खिल्ली उड़ाई कि हिन्दु जाति के अनेक प्रसिद्ध और अक्षर ज्ञान रखने वाले विद्वान् भी अपने वेद शास्त्र और पूर्वजों से घृणा कर के ईसामसीह की भेड़ों में सम्मिलित हो गए। स्कूलों और कालेजों में इतिहास की पुस्तकों में वेद को गड़रियों के गीत लिख के विद्यार्थियों के मन तथा मस्तिष्क को वेद से उपरत करने लगे थे। महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने जो ब्रह्म समाज के नेता थे, जाति तथा देश के बड़े हितचिन्तक थे, अपने आर्य्य हिन्दु धर्म वेद में आस्था रखने वाले थे, ईसाई मत के प्रचार को रोकने के लिये और वेद की सत्यता प्रकट करने के लिये कलकत्ता के ब्राह्मणों को बहुत सा द्रव्य देकर काशी में भेजा कि वहां जा कर वेद को पढ़ आवें ताकि प्रतिरोध कर सकें। जब वे ब्राह्मण देवता काशी पहुचे और वहां के धुरन्धर विद्वान् वेदपाठियों की शरण गए और वेद सुना। उन्होंने मन्द भाग्य से ऋग्वेद का मण्डूक सूक्त सुना। वहां मेंडकों की टर्र टर्र और भिन्न प्र ार की टर्र टर्रों और भिन्न प्रकार के मण्डूकों की ध्वनि का वृत्तान्त सुना। जब अर्थ पूछे तो पढ़ने वाले विद्वानों ने कहा कि वेद का अर्थ मनुष्य नहीं कर सकता। यह अनर्थ है। जब भगवान् ने वेद बनाये तो अपने मन्त्रों के अर्थ भी वह आप ही कर सकता है। इस से वह निराश होकर लौट आए और महर्षि देवेन्द्रनाथ से कहा कि वेदों में तो मेण्डकों की टर्र टर्रही लिखी है भला वह ईश्वरीय ज्ञान क्या ? जिस में मण्डूकों की टर्र टर्र और मण्डकों के सूक्त लिख दिये हों। 'ईसाई पादरियों की सच्चाई का विरोध करना असम्भव है हमारे वेदों में सत्य कहाँ ? कालिजों, संस्कृत विद्यालय के विद्यार्थियों के भी ऐसे ऐसे सूक्तों के पढ़ने से विश्वास टूट गए थे और वे भी सचमुच वेद को गडरियों के गीत के अतिरिक्त कोई ऊंचा स्थान मन में नहीं देते थे।

प्रभु की अपार कृपा हुई कि ऐसे घोर अन्धकार अज्ञान के समय जब कि समस्त हिन्दु जाति वास्तविक विद्या से हीन, शासन से दीन और ब्रह्मचर्य शक्ति से क्षीण हो चुकी थी, एक ऐसे सन्त को भारत में जन्म दिया जो कलिकाल के सर्व सन्तों में शिरोमणि सन्त कहलाये। यद्यपि उन सब सन्तों ने अपने-अपने काल में पतित लोगों को उठाया, प्रभु की ओर नाम दान देकर लगाया। परन्तु वे सब सन्त परम सत्य के एक अंश को लेकर

उसी में तल्लीन हो गए ।

पूर्ण सत्य की विद्या तो केवल वेदों से ही प्राप्त हो सकती थी। उसकी अन्यत्र खोज व्यर्थ थी और वह सन्त जन भक्त और महात्मा तो थे परन्तु ज्ञानी न थे । ऋषि दयानन्द जहाँ प्रभु भक्त था वहाँ वह वेदों के ज्ञान का अपूर्व पण्डित ज्ञानी था इसलिये उन्हें शिरोमणि सन्त कहने में कोई अत्युक्ति नहीं है । ऋषि दयानन्द ने वेद के मन्त्रों में और वेद के ज्ञान में मानों प्राण प्रतिष्ठा की है ? उन्हें ऋषि दयानन्द अपने आचरण में लाये । उन से पहले वेद ज्ञान और मन्त्र पाठ तो था ही परन्तु निष्प्राण और निर्जीव इसलिये था कि विद्वान् और पाठक जैसा वे बोलते और कहते थे वैसा आचरण नहीं करते थे ।

आचरण तभी हो सकता है जब बोले और सुने हुए का मनन और मन्थन हो । वे विद्वान् बेचारे श्रद्धा तो रखते थे मान भी करते थे परन्तु अज्ञान के कारण अर्थ जानने लगाने और मनन करने को एक दोष अथवा पाप समझते थे । परन्तु ऋषि दयानन्द ने मन्त्र के मनन और साक्षात् करने और आचरण में लाने का ही यत्न किया । जो जीवन बिताया जिस के इतने परिश्रम, पराक्रम और पुण्य प्रताप से सब देश वेद की सचाई पर अब मुग्ध है । यद्यपि वे हठधर्मी से या संस्कारों से अपने-अपने मत से बंधे हुए हैं, तो भी वेद और वेद के सत्य ज्ञान के प्रकाशक और प्रचारक का सिक्का सब मानते हैं । यह एक नियम है कि सिद्धान्त और सचाई अपने आप में निर्जीव होते हैं उन में प्राण प्रतिष्ठा सदैव आचरण से की जाती है । यह विशेषता इस कलिकाल में ऋषि दयानन्द महाराज के भाग्य में प्रभु ने प्रदान की जिसे हम को बार बार नमस्कार करना चाहिए और स्वयं आचरण कर के ऋषि के आशीर्वाद को प्राप्त करना चाहिये ।

ऋषि दयानन्द महाराज से पहले विद्या का कितना अभाव था । शूद्र और नारी जाति के लिये वेद पढ़ना तो पाप गिना जाता था । अब उनके प्रताप से हिन्दू, सिख, मुसलमान, जैनी, पारसी आदि कोई भी ऐसा मत नहीं जिसके यहाँ अब नारी जाति की शिक्षा को पाप तो क्या, पुण्य न समझा जाता हो । सब मतानुयायियों ने कन्याओं के लिये स्कूल, पाठशाला तथा महाविद्यालय बना दिए हैं । गौ अनाथ तथा विधवा की पुकार सुनने वाला कोई नहीं था । सब धर्म वालों ने शालायें बना दीं । जो अन्य मतों

को पुस्तकों में बुद्धि विरुद्ध बातें मानी जाती थीं, आज उन का संशोधित रूप से उत्तर बना सकते हैं।

ज्ञान-कर्म उपासना

ईंट में, पत्थर में, दीवार में, प्रभु है और हमारे में भी प्रभु विद्यमान है परन्तु उनमें वह जड़ रूप में विद्यमान है और हम में चेतन रूप में। पशु पक्षी भी खाते हैं परन्तु उनका भरण पोषण केवल अपने लिए होता है। मनुष्य में ५ कोष हैं।

(१) अन्नमय कोष पशु पक्षी मनुष्य सब में है। पर पशु जड़ता से खाते हैं, मनुष्य अन्न को सात्विक बुद्धि से खाता है। जो मनुष्य अन्न को अन्न न समझ कर खाता है वह भी पशु की तरह उदर पूर्ति करता है।

(२) द्वितीय प्राणमय कोष है। बल पशु और हम में है, पर हमारे में जो बल की मात्रा है वह पशुओं से कहीं अधिक है।

(३) तृतीय मनोमय कोष है। हम में विशेष चेतनता है पर पशुओं में वह नहीं है। हमारी चेतनता हमें आत्मसाक्षात् कराती है। पशुओं को नहीं कराती। तभी तो नामकरण संस्कार में 'कोऽसि' कहते हुए पिता पूछता है, और स्वयमेव ही अपने विचारों के द्वारा बच्चे की आत्मा पर प्रभाव डालते हुए उसे आत्मसाक्षात् कराता है।

(४) चतुर्थ विज्ञानमय कोष है। इस के द्वारा मनुष्य प्रभुप्रदत्त बुद्धि से चमत्कारिक कार्य करते हुए बुद्धि की विलक्षणता दिखाता है जो पशुओं को कभी मिल ही नहीं सकती।

(५) पञ्चम है आनन्दमय कोष। यह तो प्रभु देव ने अपनी अपार कृपा से केवल मनुष्य को ही प्रदान किया है। यही कारण है इन कोषों की सहायता से हम ज्ञान-कर्म-उपासना में प्रवृत्त हो कर इनके महत्व का अनुभव करते हुए जीवन में विशेषता उत्पन्न कर सकते हैं। सब से प्रथम है कर्म। कर्म वह है "जो बन्धन से छुड़ावे" कर्म जड़ भी होता है। जब हम किसी का हित न करते हुए काम करते हैं तो वह पशु कर्म होता है। परन्तु

चेतन कर्म में ३ प्रकार की विशेषताएं होती हैं।

(१) **जनता का लाभ हो और उसके साथ ही जनता उसे स्वीकार करे।**

वापी, कूप, तड़ागादि की व्यवस्था एक दूसरे के अन्ध अनुकरण से सभी कर सकते हैं परन्तु यह उतने लाभदायक सिद्ध नहीं होते जितने प्रभु प्ररित कार्य सफलता देते हैं।

यद्यपि में कोई स्वार्थ नहीं। यदि नित्य प्रति यज्ञ करने के पश्चात् भी हमारे जीवन में उसका कोई लाभ नहीं हुआ और न ही जनता ने उसे अपनाया तो वह कार्य कर्म नहीं कहला सकता। श्री जगद्गुरु स्वामी दयानन्द जी के कार्यों को लोगों ने अपनाया। उनके सिद्धान्तों को सर्व तन्त्र मानने में समय लगा, परन्तु अन्त में लोगों को मानना ही पड़ा। जादू वह जो सिर पर चढ़ के बोले।

म० गांधी की 'अहिंसा' को लोगों ने यहां तक कि पठान जाति (जो अपने अत्याचार से प्रसिद्ध थी) ने भी अपनाया। यह है कर्म।

(२) **प्रभु का आशीर्वाद**—मैं काम करने के लिये जाता हूँ, मैं थक जाता हूँ। परन्तु यदि मेरा ड्राईवर ले जा रहा है तो २४ घण्टे चलने के पश्चात् भी मैं नहीं थकता। इसी प्रकार यदि परमेश्वर मेरे ड्राईवर बन जायें तो मैं काम करते हुए कभी न थकूंगा। जितने भी महापुरुष हुए हैं, हैं उन में पता नहीं कहां से असाधारण (extraordinary) शक्ति आ जाती थी कि वे काम करते हुए थकते ही न थे। उन्होंने अपना सर्वस्व अर्पण प्रभु को किया हुआ होता था। जिस प्रकार घर में बच्चे बीमार हैं पति बीमार है और स्वयं गृहिणी भी बीमार है, सच्ची सेवा करती हुई भी गृहिणी अपने में थकावट अनुभव नहीं करती। ऐसे ही यदि हमारे सभी कार्य अर्पण बुद्धि से हों तो हम भी कभी नहीं थक सकते। यही प्रभु के आशीर्वाद की प्रत्यक्ष निशानी है। तभी भगवान् श्री कृष्ण ने कहा कि :-

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्। ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना॥

म० गांधी, जवाहरलाल जी, नेता जी अपनी शरीर की शक्ति से इतना काम नहीं कर पाये जितना कि प्रभु का आशीर्वाद उन में इन्जेक्शन करता रहा है ।

देखते नहीं कि हैदराबाद सत्याग्रह के समय में हमारी समाज की यह दशा थी कि कई आपस के झगड़े मिटने में भी न आते थे । परन्तु परमात्मा के आशीर्वाद से (मेरे मन कुछ और था विधाता के मन और) सिद्धान्तानुसार आर्यसमाज में ऐसी जागृति उत्पन्न हो गई कि दिनों में वह कार्य सम्पन्न हो गया जिसके लिए पर्याप्त समय की आवश्यकता थी ।

(३) **अन्तःकरण की शुद्धि**—तीसरी विशेषता यह है कि उस याज्ञिक का अन्तःकरण प्रकाशमान हो जाता है और मार्ग स्वयमेव खुला हुआ नजर आ जाता है । परमात्मा उसके हृदय में और बुद्धि में ऐसी विलक्षणता उत्पन्न कर देते हैं जिस से वह स्वयमेव सांसारिक भ्रम जालों को अपने ऊपर भरोसा रख कर मिटाने में सफल हो जाता है ।

पाठ भूल गया ह, गुरु से दोबारा पूछने के लिये गये तो गुरु ने कहा कि दयानन्द इससे अच्छा था कि यमुना में डूब कर मर जाते । सुनना था उठे और २४ घण्टे लगातार समाधि लगाई । यथा ब्रह्माण्डे तथा पिण्डे के अनुसार वायुमंडल में वे तो सब परमाणु विद्यमान थे । शब्द नित्य है, इस आधार से अपने अन्तःकरण के अन्दर उन शब्दों को दुहराया और विस्मृत पाठ ऐसा सामने आ गया कि मानो गुरु जी साक्षात् पाठ दे रहे हैं । यह है अन्तःकरण की शुद्धि । जब भी कुछ रुकावट हुई फौरन प्रभु की शरण में चले गये और प्रभु पथ-प्रदर्शक बन कर मार्गदर्शक हुये । यह है शुद्ध कर्म की निशानी ।

चेतन उपासना के भी तीन लाभ हैं

जब भक्त चेतन अवस्था में प्रभु की उपासना करता है तो सब से प्रथम उसमें निर्भयता आ जाती है, वह छाती तानकर अकेला संसार में उतर पड़ता है उस सिंह की तरह जो पानी के थपेड़े लगने पर भी सीधा तैरता हुआ विस्तृत नदी के वक्षःस्थल को फाड़ कर चला जाता है ! निर्भीक ऋषि दयानन्द अकेले ही 'दृष्टिपूतं न्यसेत्पादम्' के अनुसार जंगल

में अथवा स्थल में निर्भीक चले जाते थे। [मैं जब गुरुकुल कमालिया (लायलपुर) में पढ़ता था तो हमारे एक वानप्रस्थी कालीचरण जी ने बताया कि बनारस में उन्होंने स्वामी जी के दर्शन किये थे तो एक बार एक तङ्ग गली में (रांड सांड सीढ़ी संन्यासी इनसे बचे तो वासे कासी) इस कहावत के आधार पर एक सांड ने उन पर वार किया। स्वामी जी ने उसे सींगों से पकड़ कर ऐसा पछाड़ा कि फिर जब कभी उस गली में आता तो लोग कहते 'दयानन्द आ गया' इतना सुनते ही वह उल्टे पैर भाग उठता था। यह थी उनकी निर्भीकता कि अकेले ने उल्टी गङ्गा बहा-कर दिखा दी।]

(२) सत्यता—चेतन उपासना से उपासक को सत्य मार्ग का सहारा मिल जाता है और वह कहता है कि "योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः" उसमें स्वार्थ नहीं। वह तो दोनों के लिये समान रूप से कहता है कि प्रभो ! मैं यदि दोषी हूँ तो मुझे और नहीं तो मेरे विपक्षी को दण्ड दो हम आपके न्याय के जबड़े में हैं।

यही सत्यनिष्ठता थी जो गुरु दयानन्द जी को आदर्श सत्यवादी के रूप में प्रकट कर गई।

(३) चेतन उपासना से स्वावलम्बन की मात्रा उत्पन्न हो जाती है। उपासक आलस्य को छोड़ कर स्वावलम्बी बन जाता है क्योंकि वह जानता है कि परमात्मा उन्हीं की सहायता करता है जो अपनी सहायता स्वयं करते हैं। दया के सागर भगवान् दयानन्द ने कीचड़ में धंसे बैलों के साथ लग कर गाड़ी के जूए को बाहर करते हुए कहा था कि मैंने किसी पर ऐहसान नहीं किया। मेरे मन में दया और करुणा उत्पन्न हुई। उसको दूर करने के लिये मैंने यह प्रयत्न किया। इसमें मैंने किसी का क्या उपकार किया ? तो चेतन की उपासना के द्वारा उपासक स्वावलम्बी बन जाता है।

अब रहा शुद्ध चेतन ज्ञान।

इसके भी तीन लाभ हैं। यदि जड़ ज्ञान हो तो साधक में क्रोध के परमाणु प्रकट हो जाते हैं। वह प्रत्येक पदार्थ में क्षोभ, ईर्ष्या और द्वेष की वस्तु देखता है, किसी की बढ़ती को वह सहन नहीं कर सकता। अपनी निन्दा सुनकर व्याकुल हो उठता है और अपनी प्रशंसा सुनने के लिए अधीर

हो जाता है परन्तु चेतन ज्ञान से धीरता-वीरता और गम्भीरता ये तीन गुण उसमें आ जाते हैं। वह धैर्य धारण करके अपने ज्ञान का स्वयं लाभ उठाते हुए दूसरों को भी उससे लाभ पहुंचाता है। प्रायः देखा जाता है कि ज्ञानी मनुष्यों में धीरता नहीं होती। वे अपनी निन्दा सुनते ही घबरा उठते हैं। परन्तु चेतन ज्ञान के साथ वह यह कहता है कि जब तक तो मुझे ज्ञान था मैं 'द्वीप इव मदान्धः समभवम्'' (हाथी की तरह मदान्ध था) परन्तु जब विद्वज्जनों का सम्पर्क प्राप्त हुआ तो मद तो जाता ही रहा। नम्रता और धीरता साथ आ गई।

महर्षि दयानन्द को जब अमृतसर में लोगों ने ईंट आदि मार कर तिरस्कृत किया तो उन्होंने कहा कि यह मेरे लिए फूलों की वर्षा है। सच जानिये कि पुराने लोगों में से जो ऋषि को उनके जीवन काल में कटु-वचन कहते थे कई ऐसे भक्त बने कि उनके प्रत्येक शब्द को प्रमाण वाक्य मानने लगे।

दूसरा गुण उनमें वीरता आ जाती है, वे अपने ज्ञान से पूर्ण वीर बनकर शरीर में कमजोर होने के पश्चात् भी साहसी और वीर बन जाते हैं। म० गांधी, महात्मा बुद्ध जैसे व्यक्ति अपने ज्ञान से अंगुलिमाल जैसे डाकू और अंगरेजों जैसे कूटनीतिज्ञों को बिना शस्त्रों के भी जीत सके।

(३) तीसरी विशेषता है गम्भीरता। उनमें 'अधजल गगरी छलकत जाय' खाली बरतन तेज आवाज के अनुसार खोखला और पेनलापन नहीं होता। वे समुद्र की तरह शांत गम्भीर, पृथ्वी की तरह सहनशील, पर्वत की तरह दृढ़ होते हैं। संसार की कोई वस्तु उन्हें विचलित नहीं कर सकती। न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पद न धीराः इस उक्ति के अनुसार वे संसार से विचलित नहीं होते और न ही उन्हें कोई पदार्थ विचलित कर सकता है।

इस प्रकार चेतन, कर्म, उपासना और ज्ञान से संसार के आनन्द को प्राप्त करके प्रभु का साक्षत्कार कर सकता है।

परमात्मा करे कि हमें शुद्ध ज्ञान कर्म उपासक की शक्ति मिले और हम भी उसका साक्षात्कार करें।

आर्यसमाज की उन्नति कैसे हो ?

यह प्रश्न आप ने अनेकों बार प्रेस तथा प्लैटफार्म से सुना होगा। प्रत्येक वक्ता अपनी अपनी योग्यतानुसार इस प्रश्न का समाधान करता हुआ विधि विधान प्रस्तुत करता है। हम तो यह समझते हैं कि ऐसा प्रश्न उठा कर महर्षि दयानन्द का अपमान करना है। यदि आर्यसमाज सच्चे हृदय से उसे अपना गुरु और ऋषि मानता है जैसा कि यजुर्वेद के ३४वें अध्याय के ४६ मन्त्र में ऋषि की पहचान बताई है। यदि दयानन्द आप की दृष्टि में उस कसौटी पर पूरा उतरता है जैसा कि हमारा मत है कि वह पूरा ही उतरता है तो फिर क्यों उसके बताये मार्ग का पूर्णरूपेण अवलम्बन न करके इधर ऊधर झांकते हैं ?

प्रश्न का समाधान करने से पूर्व हम उस मन्त्र पर विचार कर लें और फिर ऋषि के नुसखे (प्रयोग) को भी देख लें कि वह हमारे रोग की परमौषध है कि नहीं। अस्तु—

लीजिये अब मन्त्र देखिये ! वह निम्न प्रकार है :—

सहस्तोमाः सहछन्दस आवृतः
सहप्रमा ऋषयः सप्त दैव्याः ।
पूर्वेषां पन्थामनुदृश्य धीरा
अन्वालेभिरे रथ्या न रश्मीन् ॥

यजु० ३४-४६

हे मनुष्यो ! जैसे (सहस्तोमाः) प्रशंसाओं के साथ वर्तमान वा जिनकी शास्त्र स्तुति एक साथ हो (सहच्छन्दसः) वेदादि का अध्ययन वा स्वतन्त्र सुख भोग जिन का साथ हो (आवृत) ब्रह्मचर्य के साथ समस्त विद्या पढ़ और गुरुकुल से निवृत्त हो के घर आए। (सहप्रमाः) साथ ही जिनका प्रमाणादि यथार्थ ज्ञान हो (सप्त) पांच ज्ञानेन्द्रिय अन्तःकरण और आत्मा ये सात (दैव्या) उत्तम गुण कर्म स्वभावों में प्रवीण ध्यान वाले योगी (ऋषयः) वेदादि शास्त्रों के ज्ञाता लोग (रथ्यः) सारथी (न) जैसे (रश्मीन्) लगाम की रस्सी को ग्रहण करता वैसे (पूर्वेषाम्) पूर्वज विद्वानों के (पन्थाम्) मार्ग को (अनु, दृश्य) अनुकूलता से देख के (अन्वालेभिरे) पश्चात् प्राप्त होते हैं। वैसे होकर तुम लोग भी आप्तों के मार्ग को प्राप्त होवो ॥

भावार्थ:—जो राग द्वेषादि दोषों को दूर से छोड़ आपस में प्रीति रखने वाले हों, ब्रह्मचर्य से धर्म के अनुष्ठान पूर्वक समस्त वेदों को जान के सत्य असत्य का निश्चय कर सत्य को प्राप्त हों और असत्य को छोड़ के आप्तों के भाव से बर्त्तते हैं वे सुशिक्षित सारथियों के समान अभीष्ट धर्म युक्त मार्ग में जाने को समर्थ होते और वे ही ऋषि संज्ञक होते हैं ।।४६।।

ऋषि ने कितने स्पष्ट शब्दों में कहा कि मैं कोई नया मत चलाने नहीं आया । जो ब्रह्मा से लेकर जैमिनि ऋषि पर्यन्त का मत है वही मेरा मत है और वही भाव पूर्ण शब्द उपर्युक्त मंत्र में "पूर्वेषाम् पन्थामनुदृश्य" विद्यमान हैं । ऋषि की पदवी तभी प्राप्त हो सकती है जब ऊपर बताये मन्त्र के अनुसार समस्त वेदों को पढ़ तथा उन पर आचरण करते हुए पूर्वज ऋषियों के मार्ग का अनुसरण करते हैं । ऋषि तो मन्त्र द्रष्टा ही नहीं होते अपितु क्रान्तदर्शी होते हैं । शताब्दियों के बाद आने वाली घटनाओं तथा बातों को पहले बता देते हैं । किसी ने ऋषि को कहा, भगवान् ! यदि कोई योग्य शिष्य बना लिया होता जो आपके कार्य को जारी रखता तो क्या ही उत्तम बात होती । ऋषि ने क्या ही सुन्दर उत्तर दिया, फरमाया मुझे शिष्य बनाने की क्या आवश्यकता है, सारा आर्य-समाज ही मेरा शिष्य है । तो आर्य भाईयो ! ऋषि आप को एक अमानत सौंप गया । आप उसके पालन तथा रक्षा में शिथिल हो रहे हो, तभी तो यह प्रश्न उठाते हो । आप कर्म भी करते हो, जोर भी लगाते हो फिर भी पर्याप्त सफलता नहीं होती । इस पर कभी विचार किया, उन्नति के साधन त्रुटि पूर्ण मानव कैसे बतायें ? उन्नति तो केवल आर्यसमाज के प्रवर्त्तक महर्षि दयानन्द के बताये हुए नियमों के अनुसार ही होगी और कोई साधन ही नहीं ।

सफलता कैसे प्राप्त हो ?

किसी कार्य में सफलता नहीं हो सकती जब तक ज्ञान और भावना साथ साथ न हों । भावना ठीक हो और ज्ञान न हो, तो वह निष्फल, विफल और असफल रहेगी । ज्ञान शुद्ध हो भावना न हो तो वह निर्बल और शिथिल होगा । एक दृष्टान्त से स्पष्ट हो जायगा । एक युवक पथिक जा रहा था, आषाढ़ मास था । सीमा की गरमी थी । तृषा ने व्याकुल किया । कंठ शुष्क हो रहा था, ओष्ठों पर पिपड़ी जम गई, जिह्वा बाहर

निकल आई, मुख तमतमा गया। थोड़ी दूर गया तो पर्वत से पानी रिस-रिस कर आता देखा। किसी धर्मात्मा महानुभाव ने एक ताल उस झरने के साथ बनवा दिया था। ताल तो जल से पूरित था परन्तु जल निर्मल न था, गदला था। आश्चर्य में पड़ गया, अन्ततः विवश हो कर जल के २-४ घूँट पिये, तृषा शान्त की और विचार आया कि बनवाने वाले ने तो अच्छा किया। आते जाते पथिकों के लिये ताल बनवा दिया। जल मलिन हो गया है। मन में परोपकार की भावना उठी। वस्त्र उतार लंगोट कसकर ताल में प्रवेश करके जल लोटे से निकालने लगा। परन्तु ऊपर से जल पड़ भी रहा था। जितना निकलता उतना भर जाता। घंटों बीत गये। एक साधु उस मार्ग से गुजरा, कहा, नौजवान! क्या कर रहे हो? नौजवान कुछ थक भी चुका था, आवेश में आकर कहा, देखते नहीं हो, अन्धे हो पानी निकाल रहा हूँ। साधु ने कहा, देख तो रहा हूं परन्तु आप चाहे सौ जन्म भी पानी निकालते रहो, ताल खाली नहीं हो सकेगा। भावना तेरी अच्छी है परन्तु थोड़ी सी भूल है। पानी की गति का रुख मोड़ दे। नौजवान ने बान्ध लगा पानी का रुख मोड़ दिया। ताल को थोड़ी देर में खाली कर दिया। देखा कि नाली में मिट्टी है, जल नाली से होकर आता है, मिट्टी मिल जाती है, इसलिये यह सारा जल गदला हो जाता है। साधु ने कहा, नाली में पत्थर रख दे। नौजवान ने नाली के तल में एक दूसरे के साथ जोड़ कर पत्थर रख दिये तो २-४ घंटों में ताल स्वच्छ जल से भर गया। नौजवान अपनी सफलता पर प्रसन्न होता हुआ अपने घर को चला गया। तो मित्रो! ज्ञान और भावना दोनों का साथ-साथ होना आवश्यक है।

महर्षि ने एक नियम बनाया कि "सब सत्य विद्या और विद्या से जो पदार्थ जाने जाते हैं उन का आदि मूल परमेश्वर है।" अकेले ऋषि दयानन्द ने दस वर्ष कार्य किया और जगत् को हिला दिया। आचार्य को दक्षिणा दे, दीक्षा लेकर कुम्भ पर आया, प्रचार करने को, परन्तु साहस न हुआ। अपने अन्दर कमजोरी को महसूस किया। ब्रह्मचारी था, विद्वान् था, कमजोरी कैसी? मन कमजोर हो गया। तप की कमी अनुभव की। ऋषि दयानन्द से पहले भी धुरन्धर वेद के विद्वान् विद्यमान थे। मन्दिर भी थे, भक्ति पूजा भी होती। उनको आर्यसमाज बनाने की आवश्यकता क्यों पड़ी? जहां एक कूप पहले मौजूद हो फिर दूसरा पास ही लगा दे तो उसे लोग क्या कहेंगे? यदि वह कूप पूर्ण हो तो लोग उसे ईर्ष्यालु कहेंगे। वरन्

कूप लगाने की तो तब आवश्यकता है, तब बुद्धिमत्ता है जब पहले कूप में पर्याप्त जल न हो। यदि जल भी पर्याप्त हो परन्तु मीठा न हो तब इन त्रुटियों को समक्ष रख कर अन्य कूप लगाना आवश्यक हो जाता है। ऐसे ही ऋषि दयानन्द को आर्य समाज को जन्म देना पड़ा।

अब ऋषि ने देखा कि तप की कमी है। "तप: पुनातु पादयो:" दोनों काल संध्या में हम कहते हैं, पांव ने सारे शरीर का भार उठाया हुआ है, तप कर रहा है परन्तु फिर तप भी तो पवित्र होना चाहिये। एक टांग पर खड़े हो जाना, एक भुजा को ऊपर कर के सुखा देना आदि तप नहीं है, यह तो दम्भ है। कहा "सत्यं पुनातु पुन: शिरसि" सिर को सत्य स्वरूप प्रभु, सत्य से पवित्र करो, जैसे शरीर में सिर ऊपर है, उसके बिना शरीर बेकार है। परन्तु उसकी स्थिति तो पांव से है। ऐसे ही अध्यात्म में 'सत्य' सिर है और "तप" उसका पांव है। देखा ज्ञान तो है, तप नहीं। तीन वर्ष पर्य्यन्त चंडी पर्वत पर जाकर तप किया और फिर कार्य क्षेत्र में उतरा। प्रचार किया, वेद भाष्य किया, अनेकों ग्रन्थ लिखे, शास्त्रार्थ किये, दुनिया को चकित कर दिया।

आर्यसमाज ने ऋषि के पीछे महान् कार्य किया। जा कार्य ऋषि दयानन्द ने दस वर्ष में किया, हम अपने अन्दर देखें कि १०० वर्ष में हमने कितना काम किया है? आशा थी कि गुरुकुल स्कूल और कालिजों से धुरन्धर विद्वान् और तपस्वी निकलेंगे परन्तु परिणाम असन्तोषजनक निकला। प्राय: आस्तिकता भाग रही है। फैशनपरस्ती और कम्युनिजम बढ़ रहा है। स्कूलों में पढ़ा था "क"—कुत्ता, 'ख"—खोता, "ग"—गधा आदि। ईश्वर जब सब विद्याओं का आदि मूल है तो ईश्वर का ज्ञान देने के स्थान पर गधे खोते का ज्ञान दिया। इतिहास, भूगोल, अर्थ विद्या, गणित, रसायन तथा विज्ञान में तो ईश्वर को सर्वथा ही भुला दिया, तो फिर सफलता कैसे हो? हम ने वास्तविक ज्ञान को लिया ही नहीं, पढ़ा ही नहीं।

किसी सज्जन के यहां भोजन करने गये तो उन की दो पुत्रियां एक B. A. B T. और एक मैट्रिक सम्मुख आई, मैंने पूछा, पुत्रियो! नाक बड़ा है कि आंख? आंख बड़ी है कि कान? कहने लगी दोनों ही बड़े हैं। दोनों तो बड़े हो नहीं सकते, एक बड़ा होगा। तो उस सज्जन ने कहा कि महाराज जी! सैंकड़ों उपदेश सुने परन्तु याद नहीं रहते।

मैंने कहा कि आपका कान बलवान् है नाक निर्बल है। अब यदि किसी अध्यापक से ही पूछ लिया जाय, क्यों मास्टर जी! ईश्वर दयालु और कृपालु कैसे ? उत्तर मिलेगा, पता नहीं। संध्या करते २ बीसियों वर्ष बीत गये। कोई परिवर्तन ही नहीं आया। हालांकि महर्षि लिखते हैं कि ब्रह्म यज्ञ से आत्मा की उन्नति और अन्त:करण की शुद्धि होकर ईश्वर प्राप्ति होती है, हमारा तो कुछ न बना।

इस का एकमात्र यही कारण है कि हम जो कुछ करते हैं ज्ञान और भावना का ऐक्य उस में नहीं होता। ज्ञान है तो भावना नहीं, भावना है तो ज्ञान नहीं, हमारी असफलता का यही मुख्य कारण है।

सन्ध्या के अङ्ग स्पर्श मन्त्रों में चार वाक्, प्राण, चक्षु और कर्ण खुले हैं, नाभि, हृदय, कण्ठ और सिर बन्द हैं डाट लगे हुए हैं क्यों ? कभी किसी ने विचार किया ? आंख और मुख खुले हुए हैं, जब चाहें बन्द कर लें, कान और नाक बन्द नहीं हो सकते।

कवि ने कहा :—

अन्दर के पट तब खुलें बाहर के जब बन्द ॥

प्रार्थना मन्त्रों में सर्वप्रथम कहा कि "हे सवितः देव ! हमारे दुःख दुर्गुण, दुर्व्यसन सब दूर कर दें और कल्याणकारक शुभ गुण कर्म स्वभाव प्रदान करें"। फिर कहा "कस्मै देवाय विधेम"—परमात्मा की स्तुति करत हुए कहा कि उस सुख स्वरूप परमात्मा की योगाभ्यास और अति प्रेम से विशेष भक्ति करें।"

अब प्राय: आर्य समाज में न योगाभ्यास है, न भक्ति। भक्ति को तो अवैदिक सिद्ध करने के लिये प्रयत्न किये जाते हैं। भगवान् करें कि हम ऋषि के बताये मर्म को समझें और इतस्तत: झांकने तथा वितर्क के स्थान पर उसके ही बताये मार्ग का श्रद्धा तथा प्रेम से अनुसरण करें, जनता तो स्वयं ही आपके पीछे २ आयेगी। यही आर्य समाज की उन्नति का एक मात्र अमोघ साधन है। ऋषि को जानो, मानो और उस की आज्ञा का पालन करो।

यज्ञमय जीवन

ओ३म् कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳसमाः । एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ।। यजु० ४०-२०

यह मन्त्र बड़े काम का है । इसे समझ कर आचरण कर लेने पर मनुष्य का जीवन कमल जैसे सदा पानी से ऊपर रहता है, लिप्त नहीं होता, इसी प्रकार मनुष्य भी लिप्त न हो ।

हम में से जितने भी पुरुष-स्त्री हैं, किसी का किसी के साथ रङ्ग रूप नहीं मिलता । सब का परिवार है पर एक जैसा नहीं । यह सब कर्मों का फल है । किस्मत का नाम लेते ही हमारे हाथ की अंगुली माथे पर जा पड़ती है । वहाँ क्यों हाथ लगा ? तकदीर (भाग्य) ऊपर है, भोग नीचे है । जो काम किया अपनी अक्ल से किया । मूर्खतापूर्ण कार्य का फल दु:ख और ज्ञानपूर्ण कार्य का फल सुख ।

धन बहुत है पर सन्तान नालायक है । पूर्व जन्म में ऐसा कार्य किया कि धन तो मिला पर सन्तान अनुकूल न रही ।

धन पास नहीं, पर स्त्री सुलक्षणा है, सन्तान वाली है । आज्ञानुसार काम करती है, तङ्ग नहीं करती । माता-पिता की सहायता न ले कर पति की मूंछ को नीचा नहीं होने देती ताकि पति की आंख किसी के सामने नीची न हो । यह मन्त्र कितने काम का है । जितने काम बुद्धि के अनुसार किये जायेंगे वे सुखद होंगे अन्यथा दु:खद होंगे ।

"ज्ञान के साथ किया सुकर्म है, विपरीत विकर्म है, तो अर्थ, व्यर्थ, अनर्थ, परार्थ और परमार्थ इन पाँच प्रकार से कर्म पंचधा है । अब देखें कि हम कैसा काम कर रहे हैं । अर्थ तो स्वार्थ के लिए है परन्तु ऐसा कार्य करो जिससे वह अनर्थ और व्यर्थ न हो जाय । आप सुनने के लिए आए और सुना कुछ न, तो आना व्यर्थ हुआ । आप जा रहे हैं छड़ी हाथ में है । फलों को तोड़ देते हैं किसी को लग गई तो भ्रमण व्यर्थ है ।

जो चीज किसी के काम न आवे वह व्यर्थ है ।

आप ने यज्ञ किया अब देखो कि इसका क्या बना, अनर्थ तो नहीं

बना। लोग युद्ध के नाम से लोगों को बहका देते हैं तो अनर्थ करते हैं। अपने हाथ में तो कुछ न आया। अनर्थ में दूसरों का नुकसान होता है यदि यज्ञ से परमेश्वर न मिला, शांति नहीं मिली, किसी की आशीः भी नहीं मिली तो क्या लाभ? निष्कामी यज्ञ का तो तत्काल फल मिलता है। कैसे? बच्चा पैदा हुआ पता नहीं क्या बनेगा? पर माता-पिता हर्ष से फूले नहीं समाते! आशा है, वे आशा Positive की रखते हैं Negative नकारात्मक नहीं रखते हैं। अब क्या मिला। वह घर का चिराग बन गया, बाहर से आते ही थके हुए पिता को शांति मिल जाती है, आनन्दातिरेक से फूला नहीं समाता। सब द्विविधा थकावट दूर हो जाती है। छाती से लगाते ही गम दूर हो जाता है। बड़े मकान में एक बच्चा काफी है। उसके अभाव में "अपुत्रस्य गृहं शून्यम्" जिन के सन्तान नहीं होती वे पशु-पक्षी को पाल लेते हैं।

कितना सौन्दर्यमय यज्ञ है! इसकी पहली चीज है सौन्दर्य। सजी वेदी सब को प्रभावित करती है। हमारे आंख, कान, नाक अन्दर धंसे चले जा रहे हैं। सब विषय अपनी-अपनी इन्द्रियों से खिंचे चले आते हैं। पुत्र काला है पर माता की आंख से काला नहीं।

सन्तान पैदा करने की इच्छा से यदि विवाह किया होता तो पशु भी सन्तान पैदा करते हैं। आप क्यों विवाह पर हजारों रुपये व्यय करते हैं? हब्शी लोग भी सजधज से विवाह करते हैं। कौड़ियों को माथे पर सजाते हैं। पर यह सब कुछ सौन्दर्यार्थ है। परमात्मा पुरुष है प्रकृति स्त्री है। सौन्दर्य को उत्पन्न करने के लिए विवाह किया जाता है। "विवाह" एक विशेष चाल है, ऐसी चाल चले जो विशेष है। चियोंटियां भी एक विशेष चाल से चलती हैं पर वह चाल नहीं। गृहस्थ एक महान् यज्ञ है। इसका बाहर का ढांचा सौन्दर्यमय है जिसका दिल बाहर निकल जाता है वह पागल हो जाता है। पर यह सौन्दर्य हमारे दिल में आ जाय। हम यज्ञमय बन जावें। हम ने मिठाई रक्खी पर अनिमन्त्रित हो चीटियां पहुंच गई। जड़ ने चेतन को खींच लिया। हमारा दिल विशाल नहीं इसलिये हम में कोई समा नहीं सका। हमारे में ईर्ष्या द्वेष है। प्रेमगली अति सांकरी तां में दो न समाय। जैसे यज्ञ सब को सम कर देता है। उठाओ तो राख ही है। सम हो गई। सब को समान सुगन्धि आ रही है। यह है यज्ञमय जीवन! प्रभु यज्ञस्वरूप है।

गाय अपनी भावना से किसी को दूध नहीं पिलाती। संसार में जो मां रोते बच्चे को दूध न पिलाये तो वह डायन कहलाएगी, परन्तु माता को तो चिंता पड़ जाती है। यज्ञ वसु है, बसाने वाला माता-पिता का स्वरूप है। याज्ञिक, संसार का माता-पिता बन जाता है। उन के हृदय में सन्तान बस जाती है। सब से बड़ा सौंदर्य यही है कि हमारा जीवन यज्ञमय हो जाय। सब को खींच ले। जैसे लोहे को मिकनातीस (चुम्बक) खींच लेती है ऐसे ही निष्काम कर्म का फल है। जिस में फल की इच्छा न हो। अग्नि बिना भोगे प्रकाश और ताप देती है।

निष्काम कर्म लिपायमान नहीं होता। इसके विपरीत हमारा अर्थ, व्यर्थ और अनर्थ हो जायेगा।

परार्थ :—दूसरे के लिये हो, यज्ञ इसलिये नहीं किया कि लोगों को खुशबू पहुंचे। इसलिये किया है लोग लाभ उठा जावें, नहीं तो शादी है। दिखावा है। तात्पर्य तो यह है कि जीवन कल्याणमय हो जाय यह है परार्थ।

यज्ञ में जब तक एक इष्ट देव को न बसाया जावे तब तक अहंकार रहेगा। विपत्ति में तो पुकारते हैं पर अहंकार के आने से तंग गली में वह कैसे आवे? बच्चा मां के दिल में समाया हुआ हो। माता कहीं बैठी हो बच्चे का रुदन सुन कर दौड़ पड़ती है। सब कुछ भूल जाती है। इसका नाम है बसाना। बसाना तो मन में है। नाम लेते ही आकार सामने आ जाये। उसे मन के कुण्ड में बसाओ। "ओं अग्न आयाहि वीतये" हे अग्ने ज्ञानस्वरूप हमारी पुकार से हमारे अन्दर आ जाओ। हम यज्ञ के देवता को नहीं जानते। मुसलमान जन भार उठाते हैं तो "या इलाही" कहते हैं, उस समय प्रभु उनमें बस कर कार्य कराते हैं। उस प्रभु को तो उन्होंने नहीं देखा था। उसकी बलवती सत्ता को समझते हैं, और उठा लेते हैं। इस यज्ञ का अधिष्ठाता है इन्द्र। उसकी सत्ता को जान लें तो हम में प्रकाश और बल आ जायेगा। मन को दर्पण बनाओ। यज्ञ के समान कोई काम नहीं, प्रभु का प्रतीक है। प्रभु ने कहा कि मैं अग्नि समान हूं। अग्नि राजा, रङ्क, धनी, निर्धन किसी को नही देखती। सब को सुगन्धि देती है। किसी ने मुझे पिता शब्द से सम्बोन्धित किया, परन्तु मैंने टाल दिया। कौन सी चीज थी जो मुझे टालमटोल करा रही थी। वह था अहंकार। परन्तु मैंने

सोचा प्रभु तो सच्चा पिता है वह तो टालता नहीं। वह सब को स्वीकार करता है। वह पक्षपात रहित है। अशुद्ध वस्तु को अग्नि की तरह शुद्ध करता है। मिट्टी सड़ा देगी, वायु सुखा देगी, पर अग्नि अशुद्धता दूर करके निर्मल बना देगी। दूध में पानी हो, अग्नि उसे खरा बना देगी। प्रभु ने कहा कि मैं अग्नि हूं। इस में सब कुछ भरा है। मोटर, इंजन, बिजली सब में आग है, पर वह तो हानिप्रदायक है, पर प्रभु रूप अग्नि की उपासना में तो लाभ ही लाभ है हमारा कर्म परार्थ होना चाहिये।

परमार्थ :—परम+अर्थ परम तो प्रभु है। जो काम प्रभु के मिलाप के लिये किया जाय वही काम आत्मा का है। उस यज्ञ में कुछ भी व्यर्थ और अनर्थ नहीं है। श्रेष्ठतम कर्म है 'सुन्दर कर्म' तो वह है जो दूसरों का कल्याण करे और आप सत्य स्वरूप हो जावे।

सौन्दर्यपूर्ण सृष्टि मानो ईश्वर का शरीर है। सब को लुभाती है। विष्ठा में पड़ा कीड़ा बाहर निकलना पसन्द नहीं करता। हम प्रतिदिन खा कर उसकी मूत्र विष्ठा बनी देख कर भी रोजाना यही कार्य करते हैं। बढ़िया से बढ़िया सेव खाओ, टट्टी बन जाये। बदबू आती है। पर हमारा प्यार इस से कितना है, लाखों रुपया खर्च करते हैं लोग वेश्यागमन में। जो प्रभु को पागल बनायेगा वह स्वयं पागल होगा। इसलिये हमारे सब अर्थ व्यर्थ और अनर्थ जाते हैं।

प्रभु के सब काम निरन्तर रूपेण कुछ भी किसी को बतलाए बिना परमार्थ भावना से हो रहे हैं। माता के गर्भ में बच्चे के लिये सब कुछ बनाया पर गुप्त है। जिस ने उसे समझा वह तर जायेगा नहीं तो नरक में गिरना पड़ेगा।

भगवान् आप यह आशीर्वाद और शान्ति दें।

दुर्लभ वस्तु

ओ३म् उप प्रागात्परमं यत्सधस्थमर्वां ॥
अच्छा पितर मातरम् च ।
अद्या देवांजुष्टतमो ही गम्या अथाशास्ते दाशुषे वार्याणि ॥

य० २९।२४

पदार्थः—हे विद्वन् ! (यत्) जो (अर्वान्) ज्ञानी जन (जुष्टतमः) अतिशय कर सेवन किया हुआ (परमम्) उत्तम (सधस्थम) साथियों के स्थान (पितरम्) पिता (मातरम्) माता (च) और (देवान्) विद्वानों की (अद्य) इस समय (आ, शास्ते) अधिक इच्छा करता है (अथ) इसके अनन्तर (दाशुषे) दाता जन के लिये (वार्याणि) स्वीकार करने और भोजन के योग्य वस्तुओं को (उप, प्र, अगात्) प्रकर्ष करके समीप प्राप्त होता है उस को (हि) ही आप (अछ गम्याः) प्राप्त हूजिये।

भावार्थः—जो लोग न्याय और विनय से परोपकारों को करते हैं वे उत्तम उत्तम जन्म, श्रेष्ठ पदार्थों, विद्वान् पिता और विदुषी माता को प्राप्त हो और विद्वानो के सेवक हो कर महान् सुख को प्राप्त हों वे राज्य शासन करने को समर्थ होवें।

संसार के अन्दर जीवात्मा के लिये दुर्लभ क्या है ? दुर्लभ चीज वह होती है जो कष्ट से प्राप्त होती है और समीप होते हुए भी दूर दृष्टिगत हो। सुलभ चीज वह है कि जो बिना इरादे के अपने आप हो जाती है स्वाभाविक हो जैसे मैं आंख से देख रहा हूं परन्तु मेरी पलकें (निमेष) अपने आप नीचे ऊपर हो रही हैं, बिना इरादे के।

यदि मुझे निरन्तर ध्यान से देखना पड़े तो पलकों को रोकना पड़ेगा। इस से थोड़ी देर में मैं थक जाऊंगा। ऐसे ही बोलते हुए, चलते हुए, सोते हुए अपने आप श्वास आता जाता और रुकता है। यदि मुझे श्वास को दीर्घ करना हो तो दोनों अवस्थाओं में कष्ट प्रतीत होगा।

जीवात्मा के लिये दुर्लभ जन्म मनुष्य का है, कहने को तो हम सब कहते हैं कि मनुष्य जन्म दुर्लभ है। परन्तु हम इसकी कीमत नहीं जानते क्योंकि हमने इस को जाना नहीं, किन्तु सन्तों ने तो अन्तर्दृष्टि से जाना है और कहा है कि :—

मानुष जन्म दुर्लभ है मिले न बारम्बार।
तरुवर से पत्ता झड़े फिर न लागे डार॥

मनुष्यों और पशुओं की गिनती हो गई परन्तु शेष जीव जन्तुओं की गिनती नहीं हो सकती।

पृथ्वी के थोड़े से टुकड़े को खोद कर कीड़ों और मकोड़ों को देखें तो असंख्यात होते हैं। कुत्ते को तोय तोय करके बुलाते हैं और इसे खिलाते हैं किन्तु मनुष्य दुर्लभ जीवन वाला होता हुआ भी दर-दर मांगता फिर रहा है। परन्तु कोई उसे नहीं देता। मैं अफ्रीका से आया तो अपनी आंखों देखा बम्बई के एक होटल से रोटी खा कर ज्यों कुत्ते को ग्रास डालने के लिए उठा तो बहुत से आदमी बूढ़े, बच्चे, स्त्रियां उस ग्रास पर टूट पड़े और परस्पर लड़ने लगे। वह ग्रास नाली में जा पड़ा और वह उठा कर किसी आदमी ने खा लिया। ऐसी दशा होते हुए भी मनुष्य पशु बनना नहीं चाहता। यदि किसी को हम कुत्ता, गधा, उल्लू नाम से पुकारें तो उसे क्रोध आ जाएगा। इसलिए वह जीव भाग्यवान् है जिसे मनुष्य का जन्म मिला। उससे भी वह भाग्यवान् है जिसे सुख सम्पत्ति की दुर्लभ वस्तु प्राप्त है।

सुख के दो साधन हैं

सुख मिलता है एक तो जड़ पदार्थ से अन्न, जल, वस्त्र, महल आदि से और दूसरा मिलता है चेतन से। चेतन में सब से पहले माता, पिता अच्छे नेक और धर्मात्मा हों ताकि बच्चे को सुख मिल सके। पशुओं के भी माता पिता हैं परन्तु उन्हें सुख कहां? मक्खी, मच्छर, बिच्छू आदि मल से पैदा होते हैं। उन्होंने ऐसे ही मलिन कर्म किए जिस से उनको उत्पत्ति पोषण रहना, सहना, मरना, जीना मल में ही है। उनके कोई माता पिता नहीं। ऐसे भी जीव हैं जिनके माता पिता हैं परन्तु उनको माता का दूध प्राप्त नहीं जैसे पक्षी और मुर्गी आदि। ऐसे जीव भी हैं जिन को माता से दूध तो मिलता है परन्तु माता की गोद प्राप्त नहीं जैसे गाय, घोड़ा आदि पशु। एक मनुष्य ही ऐसा प्राणी है कि जिसे माता पिता की गोद और माता का दूध तथा छाती का प्रेम प्राप्त है, ऐसे कहने को तो हम जो अच्छा आदमी हैं उसे धर्मात्मा कह देते हैं किन्तु धर्मात्मा तो वह है जो सत्य और न्याय से आचरण करता है जिसने सब कुछ प्राप्त कर लेने पर सत्य और न्याय को धारण नहीं किया वह परमात्मा को नहीं पा सकता।

अच्छे माता पिता के पश्चात् मनुष्य को स्त्री की आवश्यकता है। स्त्री सुलक्षणी हो गुण कर्म स्वभाव वाल हो, फिर चाहिए सन्तान और सन्तान हो आज्ञाकारी। मनुष्य सामाजिक प्राणी है। उसे मित्र की भी आवश्यकता। मित्र हो तो सच्चा, केवल आपत्ति में सहायता करने वाला सच्चा मित्र

नहीं कहलाता। बल्कि मित्र तो वह है जो कि कुमार्ग पर न जाने दे। बुराई से हटाये। ऐसा हां में हां मिलाने वाला न हो जैसे छोटी आयु के विवाह में सहयोग देने वाला। ऐसे मनुष्य को मित्र नहीं कहते अपितु अमित्र कहते हैं। शत्रु तो वह नहीं क्योंकि उसकी भावना खराब नहीं। परन्तु वह अज्ञानी से मित्रता करता है इसलिए मित्र है। वेद भगवान् ने भी कहा है कि :—

अभयं मित्रादभयममित्रात् ।

मनुष्य का स्वभाव है कि वह सीधा मार्ग ढूंढता है, यदि उसे किसी टेढ़े मार्ग पर खड़ा कर दो तो वह सीधी सड़क पर ढूंढेगा। कुराह से बचेगा। परन्तु पशु को सीधी सड़क पर भी खड़ा कर दो तो भी वह सीधा नहीं जाएगा। चाहे घोड़ा सिखाया हुआ भी हो बिना मनुष्य के हाथ में बाग होने के सीधा नहीं जाएगा, भाग्यशाली नौकर की भी आवश्यकता है। नौकर वफादार विनम्र हो, आज्ञाकारी हो और सब से बड़ी बात कि वह हितचिन्तक हो। मनुष्य को आगे अपने पथप्रदर्शन के लिए गुरु भी चाहिए किन्तु निःस्वार्थ निश्छल निष्कपट हो। इससे भी वह बड़ा भाग्यवान है जिसमें मनुष्यत्व हो। कोई व्यक्ति अन्दर की आंखों से अपने आपको बड़ी मुश्किल से कह सकेगा वह बड़ा भाग्यवान् है जो दूसरों को मनुष्य बना सके तथा अपनी सन्तान को मनुष्य बना सके। वेद में भी कहा है कि :—

मनुर्भव जनया दैव्यं जनम् ।

अर्थात् मननशील बन और दिव्य सन्तान को उत्पन्न कर। अति दुर्लभ वह है जो सब कुछ प्राप्त होते हुए भी अपना छुटकारा कर सके, आवागमन के चक्कर से केवल मनुष्य ही छूट सकता है। मनुष्य इस ब्रह्माण्ड में बिल्कुल छोटा सा ही है और परमेश्वर तो एक ब्रह्माण्ड क्या अनेक ब्रह्माण्डों से भी बड़ा है, किन्तु इस छोटे से मनुष्य जीव के लिए इतना महान् परमात्मा इतना ही बड़ा है जितना पुत्र के सामने पिता क्योंकि पुत्र पिता की आत्मा है जैसे माता के गर्भ में बच्चा है। परन्तु वह दो नहीं कहलाते उस वक्त दो कहलायेंगे जब २ पृथक् हो जायेंगे। संसार के अन्दर सब सौदागरी हैं, भगवान भी बड़ा सौदागर है जैसे वेद में कहा कि —

वसनेव विक्रीणावहाऽइषमूर्ज शत क्रतो ।।य० ३।४९०।।

शब्दार्थ—[शतक्रतो] असंख्यात कर्म वा ज्ञान वाले जगदीश्वर आपकी कृपा से हम यज्ञ कराने और करने वाले विद्वान् होता और यजमान दोनों [इषम्] उत्तम २ अन्न आदि पदार्थ [ऊर्जम्] पराक्रम युक्त वस्तुओं को [वसनेव] वैश्यों को व्यवहारों के समान को सिखा [विक्रीणाव है] दें वा ग्रहण करें।

ओ३म् देहि में ददामि ते नि मे धेहि नि ते दधे।

शब्दार्थ—हे मित्र तू [मे] मुझे यह वस्तु [देहि] दे वा मैं [ते] तुझको वस्तु [ददामि] देऊ वा देऊंगा तथा तू [मे] मेरा यह वस्तु [निधेहि] धारण कर, मैं [ते] तुम्हारा यह वस्तु [निदधे] धारण करता हूं।

यदि कोई हमसे प्राण ले ले तो भी मर जायेंगे। यदि हम प्राण किसी को अर्पण कर देवें तो भी मर जावेंगे। प्रत्येक इन्द्रिय से लेना और देना है। परमेश्वर का काम भी देना और लेना है। हम भगवान को क्या देवें जिससे हमको मनुष्य का जन्म मिले ? कोई ऐसा काम करना पड़ेगा जिसमें कुछ कष्ट प्रतीत हो वह काम जो पशु नहीं कर सकता। पशुओं को यदि सिखाया भी जाय तो वह दूसरे पशुओं को नहीं सिखा सकते। परन्तु मनुष्य जो कछ सीखता है वह दूसरे को सिखा सकता है।

धन दौलत आदि अन्न, जल, वस्त्र से अधिक दान केवल विद्या का ही है तथापि शास्त्रकारों ने कहा है कि :—

सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते।

जिससे मनुष्य जन्म हो सकता है। विद्या पढ़ना और पढ़ाना मनुष्य का काम है। प्रत्येक मनुष्य विद्या नहीं पढ़ा सकता है तो इसका अर्थ है कि कोई भी मनुष्य न बने किन्तु प्रत्येक मनुष्य अपनी सन्तान को सिखाता ही है और विद्या के लिये तन, धन और अन्न का दान देना भी विद्या का दान है। विद्या तो वही है जो परमेश्वर का ज्ञान करा दे, विद्या का प्रकाश हो जावे, जो प्रभु का ज्ञान करा सके। ईश्वर का नाम लेने से मनुष्य का जन्म तो मिलेगा ही। वाणी और हाथ से यदि काम किया है मन खोटा हो तो भी मनुष्य बनावेगा। प्रत्येक अवस्था में वाणी और हाथ के किए का फल मिलेगा। प्रत्येक मनुष्य को बलिवैश्वदेव यज्ञ अवश्यमेव

करना चाहिए। जो आदमी चिऊंटी से ले कर हाथी पर्यन्त पशु-पक्षी आदि और वृक्ष, दीन, दुःखी और कङ्गाल की सेवा करता है उसे सुख-सम्पत्ति सब साधन प्राप्त होते हैं। लोग तीन-मंजिले मकान पर रहते हैं कुत्ते आदि कहां पहुंचें, भिखारी बेचारे की वहां पहुंच कहां ? किंतु हमारी जाति में ऋषि-मुनियों में यह बड़ी सहज प्रथा चलाई थी। अब भी कस्बों और गांवों में पक्षियों के लिए बाजरा आदि और चिऊंटियों के लिए तिल शकर आदि बिखेरते हैं।

किन्तु बलिवैश्वदेव यज्ञ के स्वरूप को जो जान कर ऐसा दान करता है उसको सुख सम्पत्ति के सब साधन प्राप्त होते हैं। यह तो जड़ सुख साधन है जो पीछे कह चुके हैं स्त्री, पुत्र, मित्र, भृत्य सब वफादार नेक धर्मात्मा मिलते हैं। यह पितृयज्ञ के स्वरूप को जान कर जो ऐसा करता है उसको यह सब साधन मिलते हैं।

अतिथि यज्ञ करने से मनुष्य को निष्कपट गुरु मिलता है हम अभी अतिथि को समझे नहीं हैं। अतिथि तो परमेश्वर ही है। हमारे यहाँ लोकोक्ति है मेहमान आया भगवान् आया अतिथि को परमेश्वर का पुत्र कहा गया है। अतिथि वह है जो परमेश्वर के वेद ज्ञान का निःस्वार्थ प्रचार संसार के कल्याण के लिये अर्थात् वह अपने पिता परमेश्वर का काम करने आया है। जो किसी के पुत्र की सेवा करता है उसके माता-पिता अपने आप उस पर प्रसन्न हो जाते हैं। उदाहरणार्थ यदि कोई मेरे पुत्र का सत्कार करता है तो मेरा पुत्र जान कर मेरी ही सेवा करता है। यदि कोई तिरस्कार करे और मुझे ज्ञात हो जावे तो मुझे उससे दुःख होना आवश्यक है। परमेश्वर तो सर्वज्ञ और सर्वान्तर्यामी है उसी दम ज्ञान हो जाता है। अथर्ववेद और कठ उपनिषद् में भी आया है कि उस मनुष्य का जप तप आदि सब नष्ट हो जाता है जिसके द्वार से अतिथि खाली हाथ चला जावे उसका तिरस्कार होवे। ज्ञान परमेश्वर की निज सम्पत्ति है धन दौलत आदि साधारण चीज है। जैसे पुत्र की अपनी कोई चीज नहीं है उस के पिता की है। जो भगवान् का काम करने आया है उसका निरादर करने से सब कुछ समाप्त हो जाता है।

एक सच्चा दृष्टान्त पहले बचपन में मेरी बहन का सुनाया हुआ सुनिये—मैं तो उसको पहले तक मनगढ़न्त तथा रोचक रूप से समझता

था परन्तु अब मैंने पढ़ा तो सच पाया। किसी महाकंजूस धनी के घर एक नयी ब्याही स्त्री भोजन बना रही थी। एक साधु अतिथि द्वार पर भोजन के लिये आये उसने उठ कर जोर के शब्दों में साधु को कहा जब उसका सुसर बैठा हुआ भोजन कर रहा था कि इस घर में कुछ भी नहीं है। साधु ने कहा क्या खा रहे हैं तो उसने कहा बासी खा रहे हैं। फिर साधु ने कहा आगे क्या करेंगे। देवी ने कहा तेरे जैसे हो जायेंगे। साधु तो चला गया परन्तु उसके ससुर को बहुत क्रोध आया कि इतना बड़ा झूठ बोल रही है। हमारा अपमान कर रही है। ससुर ने जब पूछा तो नम्रता पूर्वक कहा कि मैंने ठीक कहा है। आप उस साधु को बुला कर पूछ लेवें। उसके ससुर ने साधु को बुला कर पूछा तो साधु ने उत्तर दिया कि यह ठीक कहती है जब से यह आप के घर में आई इसने आपको दान करते या आपके घर दान होते नहीं देखा। इसलिए कहा कि यहां कुछ नहीं है और पिछले कर्मों की कमाई को ही खा रहे हैं अर्थात् बासी खा रहे हैं। कभी ठीक ही कहती फिर मैंने पूछा आगे क्या करेंगे तो कहा आप जसे हो जायेंगे। इसमें झूठ या अपमान की कोई बात नहीं। देवी ने सच्ची और वास्तविक बात ही कही है जो आज बीज नहीं बोता वह कल काटेगा क्या? ससुर की बुद्धि में यह सुनकर थोड़ा दान करने का भाव पैदा हुआ तो बहू से कह दिया कि हमारे घर में यह जो चने की बोरियां भरी पड़ी है आने वाले अतिथि को दिया करे। दूसरे दिन उन चनों को जो गलेसड़े थे और ससुर ने दान में देने के लिए आज्ञा दी थी पीस बना कर ससुर के आगे चने की रोटी परोस कर रख दी। फिर ससुर बहुत नाराज होने लगे कि मैंने तुम्हें अपने लिये थोड़ा कहा था। वह देवी बोली पिता जी मैंने तो आपकी आदत बनाने के लिये ऐसा किया क्योंकि आगे आपको ऐसी मिलेगी। आपको फिर कष्ट न हो क्योंकि जैसा कोई दान करता है वैसा ही पाता है। तब से उस धनी की काया ही पलट गई और उसे ऐसी लग गई कि अब खूब दिल खोल कर अन्न खिलाया करे और कोई द्वार पर आया अतिथि खाली न जाये। स्वयं भी साधु सन्त सेवा में निमग्न हो गया। खूब दान पुण्य करने लगा। इससे परमेश्वर ने उसे बड़ा भाग्य लगाया। आज यह बिड़ला बन्धु दानवीर विख्यात हो उस देवी के पुत्र सब संसार के सामने हैं। वह देवी दानवीर बिड़ला की माँ है।

इस द्रव्य यज्ञ करने से भगवान की प्रजा को बांध सकता है परन्तु

परमेश्वर को नहीं। "कारण" उसमें अहम् भाव रह जाता है क्योंकि शुद्ध वायु जल अन्न सब कुछ पूजा के लिए होता है परमेश्वर के लिए नहीं। इसलिए परमेश्वर को नहीं पा सकता किन्तु अतिथि मनुष्य को खिलाने से जो उसके अन्दर रक्त मांस अस्थि आदि जो कुछ भी बना उसके खिलाने से उसका भागीदार होगा। अतिथि परमेश्वर का भजन करता है और जिस भाव से खिलाया वह सब कुछ परमेश्वर के आगे रखेगा क्योंकि इस से न केवल स्थूल शरीर बनता है बल्कि सूक्ष्म शरीर भी बनेगा। कहावत है "जैसा अन्न वैसा मन" "जैसा पानी वैसी बानी" "जैसा घी वैसी धी"। हम जब किसी एक इन्द्रिय आंख कान और जिह्वा को नहीं जीत सकते तो मन को कैसे जीत सकेंगे? मेरी आंख नासिका जिह्वा में अन्न है। अन्न के बिगड़ने से सब कुछ बिगड़ जाता है। अतिथि तो शरीर के लिये नहीं बल्कि भजन के लिये खाते हैं। अतिथि की सेवा नहीं की या गन्दा खिलाया तो आपके हिसाब में वैसा ही जमा हो जाएगा। आपको वैसा ही गन्दा मिलेगा अर्थात् अन्धकारमय अज्ञानमय जीवन होगा और गुरु कोई नहीं मिलेगा। गुरु तो वह है जो अन्धकार का नाश कर दे और मन में प्रकाश कर दे। दूसरे को मनुष्य वह बना सकता है जिसमें तप और त्याग हो। हम क्या त्याग कर सकते हैं जब हमें अपने बच्चे को प्यार करने का अवकाश भी नहीं। जब तक मनुष्य भक्त नहीं तब तक त्याग नहीं कर सकता है। भगवान् का रास्ता वह बता सकता है जो भगवान् का भक्त है। भक्त तो छुटकारा चाहता ही नहीं। भगवान् की भक्ति चाहता है। वह तो चाहता है ज्ञान जो परमेश्वर की निज सम्पत्ति है और छुटकारा होता है ज्ञान से। प्रकृति और परमेश्वर के भेद करने का जो ज्ञान है वही ज्ञान है। जब तक ऐसा ज्ञान नहीं तब तक विषय वासना में फंसा रहता है। मनुष्य को परमेश्वर की भक्ति से ही परमेश्वर का ज्ञान होगा इसलिये मनुष्य को मनुष्य जन्म सफल करने के लिये सावधान हो जाना चाहिये। इस प्रकार पञ्चमहायज्ञों की योग्यता और उनके लाभ स्पष्ट ज्ञात होते हैं। जैसे ब्रह्म यज्ञ से मनुष्य योनि तो अनिवार्य ही है। इससे अतिरिक्त आध्यात्मिक लाभ अनेक हैं। ब्रह्म यज्ञ में जप, स्तुति, प्रार्थना, उपासना, सत्सङ्ग, स्वाध्याय सम्मिलित है। मनुष्य के अन्तःकरण को काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि कुवृत्तियों के कारण अपवित्रता और आधीनता रहती है सो इन सब का पृथक् २ लाभ यह है कि उपासना से मन जो मोह से अपवित्र होता है

वह पविश्र हो जाता है, स्तुति से चित्त की शुद्धि होती है, प्रार्थना से अहङ्कार और जप सत्सङ्ग स्वाध्याय से बुद्धि की पवित्रता होती है क्योंकि बुद्धि लोभ से, मन मोह से, चित्त काम से, वाणी क्रोध से, कान अहङ्कार से अपवित्र होते हैं।

देव यज्ञ से जहां बाह्य रूप में संसार की भूत प्राणियों की नीरोगता सुख सम्पत्ति, जल अन्न वायु की शुद्धि होती है वहाँ आध्यात्मिक रूप से सूक्ष्म शरीर की पवित्रता होने से ही आत्मिक बल बढ़ता है।

पितृ यज्ञ से जहाँ उत्तम माता, पिता, स्त्री, पुत्र, मित्र, भृत्य की प्राप्ति होती है वहाँ आध्यात्मिक रूप से वाणी की शुद्धि होती है। वाणी में कोमलता और मधुरता प्राप्त होती है।

अतिथि यज्ञ से समृद्धि के अतिरिक्त जहां निष्कपट गुरु की प्राप्ति होती है वहाँ सन्त, महात्मा, विद्वान् गुरुजन की सत्कार सेवा से अमृत वचन श्रवण करने से कानों की पवित्रता होती है जिस से मनुष्य बुराइयों से दूर और भलाइयों के समीप हो जाता है। बलिवैश्वदेव यज्ञ से सब जड़ पदार्थ सुख साधनों की प्राप्ति के अतिरिक्त मैत्री करना आदि गुण आध्यात्मिक रूप से होते हैं और आँखों की अत्यन्त पवित्रता प्राप्त होती है। वह दुई के दोष से मुक्त होता है। इसलिये प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है कि नित्यप्रति पञ्चमहायज्ञ कर के लाभ उठावें और दुर्लभ वस्तु की खोज के लिये सदैव प्रयत्नशील रहें। प्रभु से प्रार्थना है कि हम ऐसा कर सकें।

। ओ३म् शम्।

अनमोल मोती

अन खुटदान

मनुष्य का जीवन यज्ञमय है। वह सदा त्याग और दान करता है। दान वृत्ति से बुराइयों के त्याग की अवस्था प्राप्त होगी। इस त्याग से शुभ गुणों के ग्रहण की शक्ति आकर अन्तःकरण शुद्ध हो जायेगा। अन्तःकरण की शुद्धि से प्रभु भक्ति में एकाग्रता होकर आनन्द रस आयेगा और अन्त में आत्म दर्शन होगा।

छः साधन

मनुष्य के पास दान के छः साधन हैं। तन, मन, धन, अन्न, बल, ज्ञान। जिस के पास जो सामर्थ्य है, उसका नित्य-प्रति दान करता है, उसे अपनी सामर्थ्य की शुद्धि निमित्त नम्र और दीन होकर, न कि अहंकार भाव से।

जिन के पास कुछ नहीं, वह २४ घण्टे में अपने तन से तथा खाली समय में घड़ी-दो-घड़ी अवश्य लोकसेवा करे। योगी जन मन से, विद्वान् ज्ञान से, वैश्य अन्न और धन से अनखट दान करे कि जिस दिन से वह दान का आरम्भ करे, उससे पूर्व कुछ संग्रह कर ले। वह संग्रह किया हुआ किसी समय भी कम न होने पाये। जो रोजाना भाग निकालें उसे कुछ दें और कुछ संग्रह में मिला दिया करें। ऐसी प्रतिज्ञा कर लेवें कि विना दान दिये अन्न न खावेंगे या विश्राम न करेंगे। ऐसे वृत्ति दानी मनुष्य को मुख्य प्राण में प्रवेश करायेगी, और उससे त्याग करने की शक्ति आवेगी।

मनुष्य का बड़ा कवच वाणी और हाथ है। चाहे मनुष्य इससे नेक कर्म करे, चाहे बुरे। यही मनुष्य को छुड़ाने वाले और यही फंसाने वाले हैं।

फंसाने वाले हैं। मनुष्य को स्वतन्त्रता प्राप्त करने वाले यही और उस के साधन हैं। संसार के प्रेम भाजन बनो, या घृणास्पद। इसी लिये संध्या के अङ्ग स्पर्श में वाक् वाक् से आरम्भ हुआ, और करतल कर पृष्ठे पर समाप्ति हुई।

अनखुट दान में पांच प्रकार का दान अन्न और वाणी के आधीन हैं। तन, अन्न, बल, धन, ज्ञान से दान। किसी को बांधना हो तो हाथ से बांधेंगे। किसी का बन्धन काटना हो, छुड़ाना हो, तो हाथ से। मनुष्य के जीवन को स्याह सफेद बनाने वाले यही साधन हैं। इसलिए ऐ मानव! इन दोनों को खूब मांज और चमका। सत्य बोलना वाणी से और सत्य करना हाथ से।

सन्ध्या का दूसरा मन्त्र अंग-स्पर्श सचमुच है ही द्विजों के लिये। जितने स्थान स्पर्श के हैं वह सब ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य के स्थान ही हैं। शूद्र तो नीचे दबा पड़ा है। आसन में, यश और बल पा ही द्विज सकते हैं। शूद्र किस चीज से यश और बल प्राप्त करे, हां पवित्रता का अधिकारी शूद्र भी है जो केवल तप से प्राप्त करता है, तपः पुनातु पादयोः।

आदेश सा प्रतीत हुआ, बड़े जोरदार शब्दों में हाथ के दान की किसी दिन गैर हाजिरी न करो। तत्काल मेरा ख्याल प्रथम डा॰ चन्द्रभानु की ओर फिर गणपति की तरफ गया। गणपति कैसे हाथ से धन का दान नित्य प्रति करे, जिसे महीनों आमदन नहीं होती हो तो फौरन मैं कह रहा हूं कि गणपति! कुछ भी न बन सके चुटकी भर आटा दो, और खांड शक्कर जो भी हो चिऊंटियों के बिल में डाल दिया करो। अधिक नहीं एक पैसा नकद किसी अर्थी को दे दिया करो, भावना अवश्य बनी रहे। किसी दिन हाथ के दान की गैर हाजिरी अन्न, धन से न होने पावे। डाक्टर जी अपनी आय का अनुमान कर लें, वरना एक रुपया दैनिक तो दान कर ही सकेंगे।

जब छोटा बड़े के आधीन होता है, अर्थात् अपने अहंकार को अर्पण करता है, तब उसकी प्रेम भक्ति के प्रभाव से छोटे का मस्तक बड़े के चरणों में निहायत खुशी और प्रेम से झुक जाता है। दोनों की प्रसन्नता एक समान घुल मिल जाती है। जब बड़ा छोटे को अहंकार अर्पण करता है,

तो बड़ा छोटे के सिर को चूमता है, सिर पर हाथ फेरता है, यहां तक कि उसे कन्धे पर, सिर पर, चढ़ा देता है। और जब बराबर वालों को अहंकार अर्पण होता है तो बड़े वेग से छाती से छाती, हृदय से हृदय को मिलाकर अत्यन्त प्रेम और प्रसन्नता को प्रकट करते हैं।

प्रभु का निवास कर्म के रूप में हृदय में होता है, ज्ञान के रूप में मस्तिष्क में और भक्ति प्रेम के रूप में सारे शरीर में परन्तु निवास चरणों में होता है।

एक सन्त गद्दी पर बैठा है बहुत लोग बैठे हैं। एक तार्किक उठा, प्रश्न किया। आपने प्रभु को साक्षात् कर लिया, देख लिया है?

सन्त—तो क्या आप इन मनुष्यों के स्वरूपों को ठीक देख रहे है?

तार्किक—हां, सबको ठीक ठीक देख रहा हूं।

सन्त—तो क्या आप अपने स्वरूप को भी देख रहे हैं?

तार्किक—नहीं, हां मैं जान रहा हूं कि मैं ऐसा हूं, परन्तु देख नहीं रहा।

सन्त—तो बस जब तक अपने को नहीं देखता, तो प्रभु को कैसे देख सकता है।

तार्किक—तो क्या आप ने अपने को और प्रभु को भी देख लिया?

सन्त—हां, मैंने देख लिया है, अपने आपको। और जान लिया है अपने आपको।

तार्किक—आपने क्या जाना, और क्या देख लिया?

सन्त—यही कि मैं कुछ भी नहीं हूं बिन्दु समान, तुच्छ अत्यन्त तुच्छ हूं।

तार्किक—तो आप सब से ऊंचे क्यों बिठाये गये।

सन्त—यही शास्त्र मर्म की बात है, पवित्र ओम् का स्वरूप भी शुद्ध नहीं होता अगर बिन्दु ऊपर न विराजे। देखो! 'ओं' में अ+उ दोनों मिल कर भी अपने शुद्ध रूप में प्रकट न हो सके। जब तक तुच्छातितुच्छ बिन्दु को ऊपर नहीं बिठाया। प्यारे, जब तक मनुष्य उस प्रभु के सामने अपने को तुच्छातितुच्छ नहीं मानता तब तक वह अपने को जानता हुआ भी, कि मैं हूं, देख नहीं सकता। जब तक देखता नहीं तब उसे ऊंचा

सिंहासन प्राप्त नहीं होता । अब जब अ+उ के साथ म् अवाक् हो गई तो बिन्दु समान 'ओं' का साक्षात् है ।

आं राकि खबरशुद, खबरश बाज नया

श्रद्धालु जिज्ञासु—आप ने इसे कैसे पाया, देखा, जाना ?

सन्त—मेरा मन अहङ्कार वृत्ति को लिये एक धनी के पास पहुंचा । बड़े-बड़े ऊंचे महल, अटारियाँ, गाड़ियाँ नौकर चाकर शाही सामान देखे, मुकाबला किया, कहा इसके सामने मैं तुच्छ हूँ ।

फिर किसी दानी के द्वार पर गया, जहाँ यात्रियों की पंक्तियां खड़ी थीं, अन्न, जल, द्रव्य, वस्त्र, बड़े जोर से बंट रहा था । लोग दुआएं दे रहे थे, मेरे मन ने कहा मैं कुछ भी नहीं ।

फिर ज्ञानी के पास पहुंचा, वहां बड़े-बड़े विद्वान् शास्त्र चर्चा कर रहे थे । उनकी बात समझने की भी योग्यता न पाई । मैंने कहा ओ हो, यहाँ मैं शून्य से भी हेच हूँ, जिसे गोल अण्डा कहते हैं ।

फिर एक गुफा में गया, कितने काल से ध्यानी समाधिस्थ हैं । पूछा तो कहा वर्षों से समाधिस्थ हैं ऊपर घास जम गई है । मेरे मन ने कहा कि तू शून्य भी नहीं, यह तो तूने देखे मनुष्य, जो अभी देखने और सुनने में आते हैं । वह जो इन इन्द्रियों से परे न देखे जाने वाला और न सुना जाने वाला है तो क्या हस्ती रखेगा ।

बस प्यारे ! मेरा मन अहङ्कार रहित हो गया और कहने लगा प्रभो अब तेरी शरण पड़ गया । मैं हार गया, तू जीत गया । यह जो 'म्' प्रकृति माया की मैं थी, मैं हट कर शून्य चरणों में रह गई । अब प्रभु ने देखा, अब उस बेहिस बेजान बिन्दु को कहां छोड़ूं, निराश्रय अपना आश्रित समझ 'ओं' उड़ान के ऊपर उठा दिया ।

। ओ३म् ।

ओ३म्

भाग्यवान् गृहस्थी

एक विरक्त साधु का किसी नगर में आगमन हुआ और नगर के बाहर किसी रमणीक वाटिका में ठहरे। साधु बड़े तपस्वी और तेजस्वी थे। श्रद्धालु भक्तों की इच्छा से सत्सङ्ग भी लगता। महाराज के अनुभवी उपदेश जनता को ऐसा मुग्ध कर देते कि उन्हें अपने गृह आदि सब विस्मरण हो जाते। अनेकों बार तो उपदेश समाप्त हो जाने की भी उन्हें सुध न रहती। ज्यों के त्यों बैठे डटे रहते। दृष्टि उनकी साधु पर रहती और कर्ण भी ऐसा प्रतीत करते कि हम कुछ श्रवण कर रहे हैं और मन मग्न हो रहा है।

साधु का नियम :—

साधु का नियम था कि वह किसी गृह में जाकर भोजन न करते थे। जो खिलाता वहां ही लाता। ऐसा उन्होंने प्रथम दिवस से ही सूचना दे रखी थी।

श्रद्धालु भक्त का निमन्त्रण :—

आज एक सरल स्वभाव श्रद्धालु भक्त ने भोजन मनवाया। स्वीकार होने पर स्वगृह को गया और अपनी धर्मपत्नी से कहा। वह सुनते ही अत्यन्त हर्षित होकर बोली—मैं तो भोजन ऐसे महाराज को घर पर खिलाऊंगी।

पति—उनका तो नियम ही ऐसा है किसी गृह पर नहीं जाते।

पत्नी—वह गृहस्थी क्या ? जिसके गृह पर पधारने से अतिथि इन्कार कर दे।

पति—जब किसी ने नियम ही ऐसा बनाया हो तो कोई कैसे और क्यों भङ्ग कर सकता है ? वह पूजनीय हुए, हम गृहस्थी उनके आधीन हैं, हमारी क्या सामर्थ्य कि उनके नियम को भङ्ग करें। आवश्यकता हमें

है उनको भोजन खिलाने की न कि उनको खाने की ?

नियम भंग :—

पत्नी – इसमें गृहस्थी की कमजोरी (त्रुटि) पाई जाती है। यह नियम मनुष्य का अपना बनाया हुआ है न कि परमात्मा का। अत: यह सर्वकाल और सर्व-देश में सत्य नहीं हो सकता। हमारे तो एक प्रसिद्ध लोकोक्ति है, "मेहमान आया भगवान् आया"—यदि अतिथि (मेहमान) घर न आए तो भगवान् कैसे आया समझा जायगा।

पति—तो फिर कैसे लाया जाय ? मुझे तो असम्भव-सा प्रतीत होता है।

पत्नी मार्ग दर्शाती है :—

पत्नी—जैसे मैं प्रार्थना करती हूं उन्हीं शब्दों में आप जाकर प्रार्थना करेंगे तो वह अवश्य चले आवेंगे। भावना तो हमारे अपने ही हृदय की सच्ची और दृढ़ होनी चाहिये।

किसी कवि ने कहा है :—

चुपके चुपके जो सदा दिल से किया करता है।
उसकी निश्चय वह मन्जूर किया करता है।।
बारगाहे ईश से मायूस न होना हर-गिज।
तू तो इन्सां है वह च्यूँटी की सुना करता है।

गृहस्थी की दीनता को प्रभु भी अनसुनी नहीं करते, विशाल करुणामय होकर सुना करते हैं। तो उनके प्यारे क्यों उल्लंघन और अवहेलना करने लगे ?

आप जब जायें, तो नतमस्तक कर जोड़ प्रार्थना करें ?

प्रार्थना :—

"भगवन् ! महाराज को कष्ट तो अवश्य होगा परन्तु श्री चरणों से मेरा गृह पवित्र हो जायगा। हम कई क्षुद्र जीवों के जीवन की ज्योति श्री महाराज के चरणों से जग जावेगी।

हम दीन बुद्धि मलिन पतित आपके यजमानों की काया पलट जावेगी। हमारी और पाकशाला की त्रुटियां सुधर जावेंगी। गृह में अतिथि यज्ञ (भोजन कराने) से हमारे लिए शेष, यज्ञ शेष बनकर अमृत

बन सकेगा, अन्यथा नहीं। उच्च कोटि के मनुष्य तो उच्च होते ही हैं, वह गृह पर खिलावें अथवा बाहर। पर मैं एक निकृष्ट-सा क्षुद्र जीव हूं और अवगुणों से लिप्त हूं, महाराज की करुणामय दयादृष्टि से मेरे परिवार का सौभाग्य उदय हो जावेगा।"

पति ने प्रार्थना कण्ठस्थ कर ली और कहा क्या बनाओगी ?

पत्नी—जो आपकी आज्ञा हो और उनके रुचिकर हो।

पति—आप क्षीर, मालपुए, व्यञ्जन, पुरोडाश (हलवा) बना दीजिये और पकौड़ों पर उनकी अधिक रुचि रहती है, वह भी बना दीजिये।

पत्नी—बनाना तो यही कुछ चाहती थी परन्तु एक समय में सबका मेल नहीं। पुरोडाश और पकौड़े तो रात्रि को बनाऊंगी, शेष अब तैयार करूंगी।

पति—रात्रि का भोजन तो वह करते ही नहीं।

पत्नी—जब एक बार आजावेंगे तो आप निश्चिन्त रहिए, रात्रि को बड़े हर्ष से चरण पधारेंगे।

देवी ने भोजन अगाध श्रद्धा तथा भक्तिभाव से तैयार किया। समय हुआ और भक्त महाराज की सेवा में गए।

प्रेम का कलश उमड़ पड़ा :—

नमस्कार कर, कर जोड़ ऐसी दीनता से प्रार्थना की कि मानसपात्र प्रेम से पूरित हो गया और उमड़ पड़ा। नेत्रों से अश्रुपात होने लग पड़े।

साधु पर जादू चल गया :—

विरक्त साधु पर उसके भक्ति तथा श्रद्धा के शब्दों ने ऐसा प्रभाव किया कि साधु को अपना नियम ही मस्तिष्क से विस्मृत हो गया और तुरन्त उठकर साथ चल दिये। "नियम भंग हो गया।"

बुद्धि और शंका :—

मार्ग में जब सचेत हुआ तो विचार उत्पन्न हुआ कि यह भक्त कैसा श्रद्धालु है। वर्षों बीते, हम किसी गृहस्थी के गृह पर भोजन करने नहीं गए, नियम नहीं तोड़ा। किसी एक ने भी ऐसे शब्दों में याचना नहीं

की। शङ्का हुई कि क्या यह इस भक्त की अपनी बुद्धि है अथवा इसकी धर्मपत्नी की ? पूछने लगे :—

क्यों भक्त जी ! यह तो बतायें कि तुम्हारी बुद्धि मुझे बांधकर ले जा रही है अथवा आपकी धर्मपत्नी की ?

भक्त—भगवन् ! मुझे इतनी बुद्धि कहां ? यह तो मेरी धर्मपत्नी पर ही प्रभु की कृपा का प्रवाह है। मेरी कमाई को शुद्ध पवित्र करने वाली तो यही साक्षात् देवी है।

इतने में घर पहुंच गए। देवी ने दरवाजे पर जाकर सत्कार और नमस्कार की। सब बालकों ने भी चरण स्पर्श कर आशीर्वाद लिया, अन्दर पहुंचे।

साधु का सत्कार :—

देवी ने लोटा जल का पति देव को दिया। एक युवा बालक तौलिया उठाए समीप ही खड़ा है। पति देव ने महाराज के पग प्रक्षालन किए और हाथ मुंह धुलाए। बालक ने झट तौलिया से पग पूँछने आरम्भ कर दिये। अतिथि देवता आज इस प्रकार का विलक्षण स्वागत देख गद्-गद् हो बालक से तौलिया खोस लिया और आप साफ करने लगे।

आसन बिछा था, बिठाया।

भोजन परोस देवी ने पतिदेव के हाथ आगे रखवाया।

देवी और साधु का संवाद —

साधु—देवी जी ! मैं भोजन खाने से पूर्व एक प्रश्न पूछना चाहता हूँ, क्या उत्तर दोगी ?

देवी—यथासम्भव और यथोचित आज्ञा का पालन करूंगी।

साधु—जिस प्रश्न को मैं पूछना चाहता हूं वह आपसे एकान्त में होकर पूछना चाहता हूं। आपका पति और बालक बाहर चले जावें और किवाड़ बन्द कर दो, तब मैं पूछूँगा।

देवी—महाराज! अब यही तो एकान्त है निश्शङ्क होकर पूछिये !

साधु—इतने व्यक्तियों में एकान्त कैसे ! आप अकेली से ही एकान्त होगा।

देवी—भगवान् ! आपको भ्रम लग रहा है। एक पतिव्रता स्त्री के

लिए तो इसे ही एकान्त कहते हैं।

शरीर में जो देखने वाली आँखें हैं, जब तक जागती हैं, इनको तो कभी एकान्त हो ही नहीं सकता।

मन विचार रहित न रहने से भी एकान्त नहीं हो सकता, एकान्त तो माना गया है जब आत्मा परमात्मा के अर्पण हो जावे। स्त्री अपने पति के अर्पण होने से स्त्री और पति एक हैं। स्त्री तो कभी भी किसी बात को अपने पति से नहीं छिपा सकती और न उसकी आज्ञा बिना चल सकती है। जब पति ही आत्मा है और पत्नी छाया है, किस से पृथक् हो? बालक इन्हीं के अङ्ग हैं। आप कृपा करके भोजन में प्रेम रस लीजिये और हमारे हृदयों को पवित्र कीजिये। तत्पश्चात् जो आज्ञा होगी, मैं प्रश्न का उत्तर दूंगी।

साधु पर प्रभाव—

साधु की अन्तर्दृष्टि एकान्त की सेवा से बहुत दूर पहुंच गई। प्रसन्नता से फूला न समाया। बड़े प्रेम से भोजन किया। परन्तु भोजन में एक-एक ग्रास में नए-नए ज्ञान की उपज होती पाई। दाँत चबा रहे हैं और मन प्रभु के गुप्त ज्ञान कर कर आह्लाद से भर रहा है और घर वालों का धन्यवाद धन्यवाद गा रहा है।

भोजन समाप्त करने पर भक्त ने कुल्ला कराया और साधु आकर बैठ गए, और संवाद फिर आरम्भ हुआ :—

साधु—देवी ! मेरा प्रश्न यह है कि आप बुद्धिमान् हैं अथवा आपके पतिदेव ?

देवी—भगवान् ! बुद्धि तो सिर में होती है, और मेरा सिर तो मेरे पतिदेव ही हैं। इससे आगे कोई शंका रहती ही नहीं।

साधु ऐसे सारगर्भित शब्दों को सुनकर आश्चर्य में आ गया कि ऐसे ऐसे गृहस्थी छिपे पड़े हैं जो हमारे ज्ञान के अभिमान को और हमारी भक्ति तपस्या भाव को अपनी श्रद्धामयी सेवा से चूर-चूर कर देने वाले हैं। यद्यपि मेरा नियम भंग हुआ परन्तु मेरा तो आज इस देवी देवता ने आवरण उठा दिया। मेरा तो इन गृहस्थियों के चरणों को नमस्कार है। वस्तुतः उसका मस्तिष्क देवी के चरणों में दूर बैठे बैठे झुकने लग पड़ा।

भक्त तो सरल स्वभाव था। उसका ध्यान तो वहां न गया परन्तु

देवी उधर ही साधु की सर्व चेष्टाओं तथा संकेतों को देख रही थी, जा गई और कहने लगी, भगवन् ! पूज्य देव होकर लज्जित करते हैं, आपके आशीर्वाद से तो हमारा कल्याण होता है।

साधु चौंका। कहा, मैं आप से बहुत प्रसन्न हूं। आप मांगो ! क्या आशीर्वाद चाहती हो।

जादू चल गया :—

देवी—भगवन् ! बस और कुछ अभिलाषा नहीं। सायंकाल भी पदार्पण करके हमें यज्ञ शेष खाने का सौभाग्य प्राप्त कराइये। देवी का जादू चल गया। इन अनोखे निराले शब्दों ने मोहित कर लिया और साधु यह भी न कह सका कि मैं तो रात्रि को भोजन किया ही नहीं करता। अवाक् हो गया और तथाऽस्तु कह कर उठ खड़ा हुआ। नमस्कार किया और भक्त पहुंचाने चले गये। मार्ग में साधु ऐसा मस्त हो गया कि भक्त से कोई बात न कर सका।

दिन भर साधु आज ऐसा मग्न और मस्त रहा कि उसे बिना प्रभु चिन्तन और नवीन ज्ञान विचारधाराओं में प्रवेश तथा उस गृह परिवार के आकार प्रकार के और कोई बात अच्छी न लगती।

सायंकाल हुआ, भक्त ने आकर सिर झुकाया और दोनों चल दिए।

सत्कार तथा परीक्षा :—

गृह पर पहुंचे। देवी तो फाटक पर खड़ी प्रतीक्षा कर रही थी परन्तु साधु ने उसे पहले ही नमस्कार बोल दिया। मर्यादापूर्वक बिठाया भोजन परोस सामने रक्खा। पकौड़े थे भिन्न भिन्न प्रकार के बिना लवण लवणीय तथा लवण, मिर्च मसाले वाले पृथक् रखे।

साधु ने देखा और पूछा, हैं तो सब पकौड़े पर भिन्न भिन्न क्यों ?

देवी—हमें ज्ञान न था कि किस प्रकार के महाराज को हितकर और प्रकृति अनुकूल हैं। साधु ने कहा, हमें तो जैसे और जो मिल जावे, सब हितकर और अनुकूल हैं। इस बात का कभी विचार नहीं करते।

परीक्षा में असफल :—

खाने लगे तो पहले बिना लवण के पकौड़ों पर हाथ पड़ा, उनमें स्वाद न आया। दिल में लज्जित हुए कि यह तो झूठ हो गया। पहले तो बिना नमक भी अस्वादु न लगते थे आज क्यों ऐसा प्रतीत हो रहा है।

खाते सब भूल गया। यही विचार समाया रहा। जब खा चुके तो लवण मिर्च मसाले वालों को अधिक स्वादु पाया। तो अन्त में ज्ञात हुआ कि यह भी परीक्षा थी, अभिमान किया, असफल ही रहा। और विचारने लगा कि यदि कोई और गृहस्थी होता जो कृत्रिम सेवा करने वाला होता तो शब्द भी और प्रकार के प्रयोग करता। देवी ने तो ऐसे शब्द बोले कि जिससे उसकी तो भक्ति टपके, परीक्षा मालूम ही न पड़े। यदि कह देती कि जो आपको अभीष्ट तथा रुचिकर है वह खावें, तो मेरी आसक्ति का उसे पता लग जाता कि मैं स्वाद के पीछे मरता हूं परन्तु ऐसा कहा कि जो आपको हितकर तथा प्रकृति अनुकूल हों, शब्दों में कितना भक्ति भाव भरा है। परन्तु मैंने आज अपना ज्ञान कि मैं स्वाद के लिए खाता हूँ परन्तु फ़ारसी के कवि ने तो कुछ और ही कहा है:—

खुर्दन बराए ज़ीस्तनो ज़िक्र करदन अस्त !
तू मोतकिद कि ज़ीस्तन अज़ बहरे खुर्दन अस्त ।।

अर्थात् खाना जीने और प्रभु भक्ति के लिए है तेरा मत है कि जीना खाने के लिए है। मुझे नमक मसाले में आसक्ति तो है यह देवी तो साक्षात् पूजा की देवी है मेरे आन्तरिक दोष को धोने वाली है।

धन्यवाद:—

खा पी कर जब निवृत्त हुए तो देवी ने हाथ जोड़कर बड़ी श्रद्धा से धन्यवाद किया कि आपने हमारे जैसे क्षुद्र जीवों को दर्शन दिया और हमारे साधारण भोजन को स्वीकार कर कृतार्थ किया ऐसा कह और कुछ भेंट सामने धरी और कहा, हमारे कल्याण के लिए कोई सुगम उपदेश और उपाय बताइए।

उत्तर :

साधु—देवा ! ऐसा गृहस्थ मैंने तो अपनी आंखों नहीं देखा। मैं क्या उपदेश करूं ? मेरा तो अभिमान आप ने चूर चूर कर दिया, रहा सहा दोष भी मेरा आज मुझे प्रतीत करा दिया, मैं किस गर्व में था।

भेंट भेंट के रूप में देवी को लौटा दी और देवी ने क्षमा माँगी और वह चल दिए। भक्त पहुँचा कर वापस आया।

अन्न का प्रभाव:—

रात्रि को शयन किया। रात्रि क्या थी तनिक ऊंघ आती तो ऐसा प्रतीत होता कि देवी कह रही है "साधु के श्वास अनमोल होते हैं, इन्हें

वृथा ना गवां, प्रभु के ध्यान में लगा।" ऐसा रात्रि भर बार बार उठकर बैठता और ध्यान करता।

गृहस्थी की याद:—

प्रातः हुआ और मन में विचार आया आज अभी उसी गृहस्थी के गृह पर जाकर बासी टुकड़ा मांग।

कहां वह प्रतिज्ञा कि गृहस्थी के गृह पर जाकर भिक्षा याचना करने खाने की शपथ ली थी आज भिक्षा के लिये स्वयं दौड़ा जा रहा है। देवी के पवित्र विचार और सद्-व्यवहार उस गृहस्थी की याद दिला रहे हैं। पहुंचा, क्या देखा कि बालक बैठे हैं, हर बालक के सम्मुख थाली में आधा आधा बासी टुकड़ा और दधि रखी है। ज्यों ही उन्होंने देखा, सब उठ खड़े हुए और नमस्कार किया। देवी ने भी नमस्कार किया। भक्त गृह पर न था।

बालकों का आतिथ्य:—

और तो था नहीं। सब बालकों ने अपना आधा आधा दिया। साधु ने कहा, बच्चो! तुम खाओ, तुम्हारा मैं नहीं लेता। वह रो पड़े। कहा, क्यों हम ऐसा पापी हैं कि आप हमारी आधी रोटी भी स्वीकार नहीं करते।

सत्याग्रह :—

अब तो हम आपके बिना नहीं खायेंगे, सत्याग्रह करेंगे।

साधु ने एक का आधे से आधा ले लिया और कहा, अब तुम खाओ! अन्य बालकों ने कहा, क्यों? हमारा क्यों नहीं लेते? बालकों की तोतली भाषा में—हम तो देंगे ही, नहीं तो तुम्हारे मुख में ग्रास ग्रास देवेंगे।

साधु झुका:—

साधु बालकों की इस मीठी और दिल से निकले शब्दों से प्रभावित तो हुआ और सब से आधे का आधा ले लिया और खाया। बच्चों के प्रेम के आगे साधु झुक गया और कहा:—

वाह रे बालको! क्षुधा तो मुझे बड़ी थी परन्तु प्रेम के कतिपय ग्रासों ने मेरी उदर पूर्ति कर दी। बड़ो हर्षित आत्मा से आशीर्वाद दिया और चल दिया।

वेद भगवान् सत्य कहता है कि वह गृहस्थी भाग्यवान् है जिसे अतिथि दूर से याद करते आवें और घर पूछते आवें । देखिये:—

येषामद्ध्येति प्रवसन्येषु सौमनसो बहुः ।

गृहानुपह्वयामहे ते नो जानन्तु जानतः ।। यजु० अ० ३ मंत्र ४२

वह गृहस्थी बड़ा भाग्यवान् है जिसको अतिथि जन दूर बैठे हुए याद करते हैं और बुलाने आते हैं।

अतिथि दो प्रकार के हैं एक वह जिनकी, सेवा वस्त्रादि से की जाती है, ऐसे अतिथि से उनको कोई लाभ नहीं, क्योंकि वह अपने आराम के लए आते हैं। दूसरे वह कि जिनकी गृह में पहुंच कर वृत्ति टिक जाए, वह भाग्यशाली हैं। ऐसा गृहस्थी सेवा के पश्चात् कहता है कि महाराज हम तो स्वार्थी हैं, हमें भाड़ा दो। हमें बताओ कि हमारा किस प्रकार बेड़ा पार हो। ऐसा मार्ग बताओ कि जिससे आत्मा को रस आए। अब वह भक्ति का रस बताता है, एक बार तो वह उनके पापों को धो देता है जिस प्रकार जल कुछ काल तक ठण्डक रखता है, उसी प्रकार गृहस्थी का पाप धुलकर वृत्ति टिक जाती है। तभी वेद ने अतिथि की सेवा की महिमा को गाया है। यहां तक शास्त्रों ने बताया कि जिस गृह से अतिथि निराश होकर लौट जाता है वहां का ऐश्वर्य, यश कीर्ति आदि सब कुछ ले जाता है।

अतः गृहस्थियो ! सावधान रहो। वेद की आज्ञा का पालन करते हुए गृहस्थ को चमकाओ और जीवन को सफल बनाओ। प्रभु देव आप लोगों को सुमति तथा बल प्रदान करें ताकि इस आदेश को आप भली भांति समझ तथा उद्देश्य पूर्ण कर सकें।

ओ३म् शम्

एक अद्भुत किरण
और
आत्मसमर्पण का फल

ओं मा पापत्वाय नो नरेन्द्राग्नी माभिशस्तये ।
मा नो रीरधतं निदे ।। ऋ० ७-९४-३ ।।

पाठक वृन्द ! मनुष्य पाप से बचना चाहता है । उसका ध्येय मिट्टी से जो भी पदार्थ बनाओ, घट बनाओ, लोटा बनाओ, सुराही बनाओ, कुछ भी बनाओ, मिट्टी ही है। इस प्रकार गोधूम से हम रोटी, पूड़ी, कचौड़ी, पकवान, आदि बना सकते हैं, आटा, सूजी, मैदा, रवा, छान (चोकर) तय्यार कर सकते हैं, इतने रूप परिवर्तन करने पर भी मूल तो गोधूम ही है। परन्तु परमात्मा की बड़ी विचित्र और अद्भुत लीला है। वह क्या से क्या बना देता है। वह विश्वकर्मा है, उस जैसा कारीगर ढूंढ़े से भी कहीं नहीं मिलता। यह उसकी महान् सामर्थ्य और कारीगरी का ही प्रताप है कि वह रज वीर्य की दो बिन्दुओं से मनुष्य का एक विचित्र पुतला बनाता है जिसके शरीरान्तर्गत मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार की कौंसिल आत्मा के आधीन सर्वदा और सर्वत्र उपस्थित कर रक्खी है। प्रत्येक कार्य करने के लिये मनुष्य को सोच विचार का साधन दिया। "जैसा कोई करेगा वैसा ही वह भरेगा" यह उसका अटल नियम है। कवि ने भी कहा है "जैसा किसी का हो अमल, वैसा ही पाता है वो फल" "दुष्टों को कष्ट मिलता है, शिष्टों का होता दुःख हरण" वह (परमात्मा) महान् फलदाता है। छोटे से छोटे कर्म का भी वह फल अवश्य देता है। वेद कहता हैं :—

कदाचन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे ।
उपोपेन्नु मघवन्भूयइन्नु ते दानं देवस्य पृच्यते ।। य० ३-३४

इसके भावार्थ में महर्षि दयानन्द लिखते हैं कि यदि जगदीश्वर कर्म

के फल को देने वाला न होता तो कोई भी प्राणी व्यवस्था के साथ किसी कर्म के फल को प्राप्त न हो सकता।

पाप का फल बुरा और पुण्य का फल सदा भलाई है। इसलिए साधक डरता हुआ अपने से अधिक बुद्धिमान् गुरु, आचार्य अथवा उपदेशक के समीप उपस्थित होकर प्रार्थना करता है कि भगवन्! हमें (पापत्वाय) पाप कार्य के लिए और (अभिशस्तये) पराधीनता के लिए और (निदे) निन्दा योग्य कार्य के लिये (मा रीरधतम्) कभी किसी के वश में न होनें दें। हमें कृपया पाप कर्म से बचने के साधन बताइये।

ऐसी अवस्था में आचार्य लोग उसे उपदेश करते हैं कि हे मनुष्य! यदि पाप से बचना चाहता है तो प्रभु की शरण ले। भगवान् कृष्ण नें भी अर्जुन को यही उपदेश दिया था कि पाप पुण्य के उत्तरदायित्व से बचना चाहते हो तो "मामेकं शरणं व्रज" मेरी शरण में आजा। इसी भाव को हिन्दी के एक कवि ने सुन्दर शब्दों में प्रकट किया :—

जीवन का मैंने सौंप दिया, सब भार तुम्हारे हाथों में।
उद्धार पतन अब मेरा है, भगवान् तुम्हारे हाथों में॥

तो प्रभु की शरण लो। उसी से ही कल्याण होगा और बेड़ा पार होगा। देखो वेद भगवान् कहता है :—

ओ३म् प्रय राये निनीषति मर्त्तो यस्ते वसो दाशत्।
स वीरन्धत्ते अग्न उक्थशंसिनं त्मना सहस्रपोषिणम्॥

ऋ० ८-१०३-४॥

इस मन्त्र में जहां आत्मसमर्पण बताया है वहां उस का फल भी बताया है। शब्दार्थ इस प्रकार है :—

हे वसो! समस्त संसार के आश्रय दाता! (यः मर्त्तः) जो मरण धर्मा पुरुष (राये) अमृत धन के निमित्त (प्र निनीषति) तुझ तक पहुंचना चाहता है। (यः ते दाशत्) जो तुझे समर्पण करता है (स) वह, हे अग्ने! (उक्थशंसिनं) वेदवक्ता (सहस्रपोषिणं) हजारों को भरण पोषण करने वाले (वीरं) पुत्र को (त्मना धत्ते) अपने सामर्थ्य से उत्पन्न करता है।

अर्थात् ईश्वर को स्मरण करने और आपको आत्मसमर्पण करने वाले याजक धर्मात्मा के घर में जो पुत्र उत्पन्न होते हैं वे स्वयं विद्वान्, वेद-वक्ता और सहस्रों को पालन पोषण करने वाले होते हैं।

तो मानो, पाप से बचने का एकमात्र अचूक साधन आत्मसमर्पण बतलाया परन्तु आत्मसमर्पण बड़ी कठिन बात है। हम शरीर समर्पण तक तो नहीं कर सकते, आत्मसमर्पण तो दूर रहा।

अर्पण किसको हो ?—शरीर बना है माता पिता और राष्ट्र तत्त्व से, इसलिए शरीर तो माता पिता के लिए है या राष्ट्र के लिये। इसी एक मर्म को भी हम समझ जायें तो भारत को स्वयं सेवकों की चिन्ता ही न रहे। पितृ सेवा से सुख की भी वृद्धि हो। अतः जो शरीर माता पिता अथवा राष्ट्र के अर्पण कर देता है, वह उत्तम है।

शरीर से दूसरे दर्जे पर मन है। मन को अर्पण करना है गुरु के। जो इसको गुरु के अर्पण करता है वही विद्वान् तथा गुणवान् बन जाता है।

परन्तु

परन्तु प्रभु के पास न तो शरीर जा सकता है न मन। वहाँ तो केवल आत्मा ही पहुंच सकती है। इसलिए वास्तविक आनन्द प्राप्त करना है और पाप से सर्वदा के लिए मुक्त होना है तो आत्मसमर्पण के लिए मनुष्य को सदा प्रयत्नशील रहना चाहिये।

आत्मसमर्पण कौन कर सकता है ?

आत्मसमर्पण केवल भक्त ही कर सकता है, परन्तु वर्तमान समय में भक्त भी कई प्रकार के हैं।

भक्त के प्रकार—तीन प्रकार के भक्त हैं, पत्थर नाथ, अङ्गोछा लाल, नमक देव।

पत्थर नाथ भक्त—जिस प्रकार पत्थर को, सौ वर्ष चाहे जल में डाल दो, पड़ा रहेगा और बाहर निकालो तो पत्थर का पत्थर ही होगा। जल की एक बिन्दु भी उसके भीतर प्रविष्ट न हुई होगी। ठीक इसी प्रकार जो भक्त माला फेरते रहते हैं और ओ३म् की रट भी लगाते हैं और मन जिनका नहीं बदलता तो वे केवल दिखावे के ढोंगी भक्त हैं, जिनको हम पत्थर नाथ के नाम से सम्बोधित कर रहे हैं। ऐसा पत्थर ऊपर से लेसदार और चमकदार बन जाता है पर जब ऊपर पांव पड़ा, तो तुरन्त फिसल जाता और चकनाचूर हो जाता है। इस प्रकार के भक्त का सङ्ग बड़ा भयानक होता है, इससे बचना चाहिये।

दृष्टांत—एक बार मैं हरिद्वार से वापस पञ्जाब को जा रहा था,

तो मेरे डिब्बे में एक बुढ़िया माता बैठी थी। गङ्गा स्नान करके घर को वापस जा रही थी, न जाने कितनी बार उसने गङ्गा में डुबकियां लगाई होंगी। माला उसके हाथ में थी, बड़ी तीव्रता से माला फेर रही थी और राम की रट भी लगा रही थी। इतने में एक स्टेशन आया गाड़ी ठहर गई, तो स्टेशन से एक माई ने जिनके सिर पर भार भी था भीतर दाखिल होना चाहा और बुढ़िया को कहा "माई जी, यह मेरी गठड़ी तनिक अन्दर ले लेना" तो बुढ़िया ने झट कहा 'जा ! जा !! यहां स्थान नहीं है।'

बैठा देख रहा था और विचार कर रहा था कि देखो ! यह बुढ़िया गंगा स्नान करके आ रही है, माला भी फेर रही है, परन्तु इसका मन नहीं बदला, यह माला फेरना तो केवल दिखावा ही है। तो इस प्रकार के भक्त जिनके मन में परिवर्तन न आये, वह पत्थर नाथ कहलाते हैं।

अंगोछा लाल भक्त—दूसरी प्रकार के भक्त अंगोछा लाल कहलाते हैं। जिस प्रकार स्नान के समय जब अंगोछा जल से सिंच जाता है तो धूप पर सुखाने के लिए लटका दिया जाता है। तो अंगोछे से जल के बिंदु टप टप गिरते हैं और अंगोछा अपना सारा जल त्याग कर देता है तो लोभ की वायु और अभिमान की धूप से अकड़ जाता है और उसके अन्दर दुर्गन्ध भी आती है। इसी प्रकार के भक्त जो होते हैं वे सिद्धियां तो प्राप्त कर लेते हैं और एक एक सिद्धि से संसार के लोगों को लाभ भी पहुंचाते हैं परन्तु अपने स्वार्थ के लिए, लोभ और कमाई के लिए। जब धन सम्पत्ति उनके पास कुछ इकट्ठी हो जाती है तो सम्पत्ति की धूप उसकी सिद्धियों को सुखा देती है और अभिमान से वे अकड़ जाते हैं और दुर्गन्ध पैदा हो जाती है अर्थात् वे अपयश के भागी बन जाते हैं।

तीसरी प्रकार के भक्त नमक देव कहलाते हैं। जिस प्रकार नमक (लवण) को जल के घट में डाल दें तो वह अपना अस्तित्व खोकर सारे को लवणीय बना देगा और सारा जल नमकीन कहलायेगा। अथवा जिस प्रकार मिश्री को जल में डाल दें तो मिश्री अपने आकार को खोकर जल को मीठा बना देती है तो उसे मीठा जल कहते हैं। मीठा अथवा नमकीन पहले और जल पीछे। ऐसा भक्त जो परमात्मा में आत्मसमर्पण करता है वह परमात्मवत् बन जाता है और पहले भक्त का नाम आता है पीछे भगवान् का। कबीर ने कहा है :—

कबीरा मन निर्मल भया ज्यूँ गङ्गा का नीर।
पाछे पाछे हरि फिरैं कहत कबीर कबीर ॥

नमक और मिश्री ने जिस प्रकार जल को अपना लिया, अपना भार घटको सौंप कर घट को अपना लिया। सारी जिम्मेदारी उस पर डाल दी। अब उसको जिस भी पात्र में डालो वैसा ही उसका आकार हो जायेगा। लोटे में लोटे का, गिलास में गिलास का। ऐसे ही प्रभु भक्त वैसे ही प्रभु रूप धारण कर लेता है:—

तदपश्यात तदभवत् तदासीत् ॥ य० ३२-१२।

प्रभु का साक्षात्कार करता हुआ वैसा ही होता है।

जहां घट का भार बढ़ा मिश्री अथवा नमक की अपनी शक्ति भी बढ़ी। जितनी शक्ति के साथ उसका मेल होगा उतनी शक्ति उसके अन्दर आ जायेगी, जैसे साईकल में वायु को भर देने से वायु का साईकल के साथ सम्बन्ध होता है। तो वह १०-१२ मील प्रति घण्टा की गति से जा सकता है। उसी वायु को मोटर के पहिये में भर दें तो गति ८० मील प्रति घण्टा तक बढ़ जाती है और वायु की गति ४०० मील प्रति घण्टा हो जाती है। इसी प्रकार जब भक्त अपना सम्बन्ध देवी देवताओं के साथ जोड़ता है तो उसके अन्दर सीमित शक्ति ही आयेगी परन्तु जब उसका सर्वशक्तिमान और शक्तियों के पुंज के साथ सम्बन्ध होगा तो उसकी अपनी शक्ति असीमित सी हो जायगी। इस तीसरी प्रकार के भक्त ही कल्याण कर सकते हैं। महर्षि दयानन्द उसी श्रेणी के भक्त थे।

आत्मसमर्पण का फल

आत्मसमर्पण का लाभ तथा फल तो वेद ने स्वयं ही बता दिया कि उसकी संतान वेद वक्ता और सर्व सम्पत्ति सम्पन्न होती हैं, सहस्रों का पालन पोषण करने वाली होती है।

प्रभु की महिमा

सचमुच विचित्र है। कोई क्या वर्णन कर सकता है। कभी तो भगवान् अल्प कर्म का महान् फल प्रदान कर रहा है। कभी अपनी विचित्र निर्माणकला से ही मनुष्य की बुद्धि को चकित कर रहा है। गर्भाशय के गुप्त स्थान में १६ कलाएं हैं जिनको चन्द्रमा का घर कहा गया है। यह तो निर्विवाद है कि उन कलाओं का चन्द्रमा के साथ सम्बन्ध है।

सुषुम्णा किरण और त्वष्टा प्राण

सूर्य की अनेकों किरणें हैं। हर एक किरण का नाम भी पृथक् है। यह और बात है कि हम मर्म को न समझें। इसी प्रकार शरीर के अन्दर कितनी नाडियां हैं, हर एक का पृथक्-पृथक् नाम हैं। साधारण जन तो नाड़ियों का नाम जानते नहीं, लोगों का ज्ञान इडा, पिङ्गला, सुषुम्णा तक ही सीमित है। डाक्टर वैद्य लोग इन से भी कुछ अधिक नाड़ियों का ज्ञान रखते हैं। और योगी तो डाक्टरों से भी अधिक ज्ञान रखते हैं। सूर्य की एक किरण का नाम सुषुम्णा नाड़ी है। ब्रह्माण्ड में सुषुम्णा है। शरीर के अन्दर भी एक सुषुम्णा नाड़ी है। ब्रह्माण्ड में सुषुम्णा किरण और शरीर में सुषुम्णा नाड़ी विशेष महत्व रखती हैं, सुषुम्णा किरण न हों तो जीवों की उत्पत्ति रुक जाय। सुषुम्णा नाड़ी न हो तो योग की गति थम जाय। अस्तु सुषुम्णा किरण सूर्य से चन्द्रमा में जाती है और चन्द्रमा को प्रकाशित करती है, चन्द्रमा में पूर्ण रूप से नहीं समाती, पात्र छोटा है, लौटकर पृथ्वी पर आती है, यहां भी वही लेखा है, वहां प्रकाश प्रदान करती हुई जल में प्रविष्ट होती है। वहां भी न समाकर कुछ अंश रज वीर्य में आता है। एक सुषुम्णा किरण है जो चन्द्रमा और जल को शीतलता प्रदान करती है, इतनी देख-देख कर आंख तृप्त नहीं होती। जब तक वह किरण सूर्य में है तो उसकी स्रोत की ओर संसार भर के प्राणी आँख नहीं उठा सकते परन्तु जब चन्द्रमा अथवा जल में प्रविष्ट करती है तो मस्तिष्क को तरोताजा कर देता है। पृथ्वी पर सुषुम्णा का अंश हरियाली रूप में प्रकट हो आह्लाद दे रहा है, रज वीर्य में प्रविष्ट हो सन्तान रूप में प्रदर्शित हो जीवनप्रद फल बन जाता है। इसी प्रकार भक्त के हृदय में जब सूर्य रूपी प्रभु की ज्योति जाती है तो वह अन्दर न समाकर बाहर आती है और उसके मुख के चहुं ओर तेजोमण्डल पैदा कर देती है, दर्शक उसको देख कर प्रसन्न होते हैं। यही किरण स्त्री के गर्भाशय के गुप्त भाग में दाखिल होती है।

स्त्री का शुक्ल पक्ष

स्त्री जब ऋतुमती होती है तो वह उसका शुक्ल पक्ष है। इसलिए सोलह दिन ही गर्भाधान करने के लिए ऋषियों ने लिखे हैं। चन्द्रकला ज्यों-ज्यों बढ़ती है, त्यों-त्यों गर्भाधान के लिये उत्तरोत्तर समय आता है। इसी शुक्ल पक्ष में स्त्री पुरुष के मेल से सन्तान हो सकती है, इसके उपरान्त नहीं। सत्रहवे दिन से स्त्री के रजस्वला होने तक जो भी स्त्री संग करेगा,

वह वीर्य को नष्ट कर रहा है ।

त्वष्टा प्राण

जीव जब गर्भ में आता है तो बढ़ने लगता है । लोग प्रश्न करते हैं जब जीव बढ़ता है तब उसके अन्दर प्राण का आवागमन है अथवा नहीं । यदि नहीं तो बढ़ता कैसे है ? यदि है तो वह मल मूत्र विसर्जन क्यों नहीं करता ? इसका समाधान वेद ने स्वयं कर दिया । जीव के अन्दर प्राण है जिसका नाम त्वष्टा है, इसी त्वष्टा से उसका पालन पोषण होता तथा बढ़ती होती है ।

पूर्व जन्मों की याद

तो वह जीव सुषुम्णा किरण के प्रकाश द्वारा ही अपने पूर्व जन्म-जन्मान्तरों को जानता है । निरुक्तकार की साक्षी इस बारे में उल्लेखनीय है :—

नाना योनि सहस्राणि मया यान्युषितानि च । मृताश्चाहं पुनर्जातो जातश्चाहं पुनर्मृतः ।। अ० १४

कि जिस समय बालक माता के गर्भ में होता है और उसे पूर्व नाना भुगती योनियों की याद आती है और उल्टा लटका हुआ पुकार करता है है कि भो ! दया करके इस बार निकालो, अब आप का ही स्मरण करूंगा । गर्भ में बालक का सिर नीचे ही होता है । उस अवस्था में प्रभु देव अपनी दयाशक्ति से उसको नम्रता का पाठ सिखाते हैं परन्तु जिस समय मनुष्य गर्भ से बाहर आता है तो वह प्रतिज्ञा भूल जाता है और संसार की वायु के स्पर्श करते ही अकड़ जाता है, अब सिर को ऊंचा कर लेता है । सुषुम्णा किरण का जीव के अन्दर प्रविष्ट करने का एक प्रमाण यह है कि उस अवस्था में उसे सुख दुःख का भान नहीं होता जिस समय मनुष्य की सुषुप्ति की अवस्था होती है, गाढ़ निद्रा होती है, दुःख दर्द का भान नहीं होता इसलिए योगी लोग अपनी आत्मा का समाधि अवस्था में सुषुम्णा में ही प्रविष्ट करते हैं और फिर उनको दुःख दर्द का भान नहीं होता वेद में भी इस का प्रमाण उपस्थित है, देखिये :—

अत्रा ह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम् । इत्था चन्द्रमसो गृहे ।।
ऋ० १।७४।१५।।

अर्थ—(अत्रा ह) यहां निश्चय से (त्वष्टुः)

समस्त संसार को गढ़ कर बनाने वाले सूर्य की (गोः) किरण का (अपीच्यम्) कुछ सुषुप्त अंश ही (चन्द्रमसो गृहे) चन्द्रमा के घर में (नाम) जाता है।

इस प्रकरण में प्राण ही त्वष्टा है जो गर्भगत पुरुष को नौ दस मास में शनैः शनैः बनाता है। गर्भाशय का गुप्त भाग चन्द्रमा का घर है जो १६ कला युक्त काम-गृह का वाचक है जो क्रम से एक पक्ष में घटता और १४ दिन में बढ़ कर पुनः ऋतुकाल में वेला के समान उपस्थित है। उस स्थान पर भी सृष्टिकर्ता परमात्मा की ही यह शक्ति है जो गर्भ में भी गुप्त रूप से विद्यमान है उस गर्भ में भी गति है उसमें भी मुख्य प्राण आदित्य का ही अंश प्रसुप्त रूप में शनैः शनैः बढ़ता है।

अथवा त्वष्टा पुरुष को कहते हैं, पुरुष का वीर्यांश ही गर्भाशय में जाता है जैसा कि उपनिषत्कारों का मत है।

'आदित्य' को उपनिषत्कारों ने 'गौ' का नाम भी दिया है। उसकी एक रश्मि चन्द्रमा की ओर जाकर प्रकाश करती है।

देखिये ऐतरेय—अध्याय २, मन्त्र १-६ और यजुर्वेद १८-४० में भी सुषुम्णा को 'गौ' कहा है।

यह किरण ही जीव को गर्भाशय में छोड़ती है। इसके लिये देखिये :—

वायुः पुनातु सविता पुनात्वग्ने भ्राजसा सूर्यस्य वाचसा। च्यन्ता-मुस्त्रियाः ।।यजु० ३५।३।

अर्थ—हे मनुष्यो ! तुम (वायु) पवन (अग्ने) बिजली को (भ्राजसा) दीप्ति से (सूर्य्यस्य) सूर्य्य के (वर्चसः) तेज से जिन हम लोगों को (पुनातु) पवित्र करे, (सविता) सूर्य्य (पुनातु) पवित्र करे (उस्त्रियाः) किरण (मुच्यन्ताम्) छोड़ें।

भावार्थ—जब जीव शरीर को छोड़ के विद्युत् सूर्य्य के प्रकाश और वायु आदि को प्राप्त होकर जाते हैं और गर्भ में प्रवेश करते हैं तब किरण

उनको छोड़ देती है। तो पाठकगण इतने से हमारा यही दिखाना ही अभीष्ट था कि उस प्रभु देव की महिमा तथा लीला कैसी विचित्र हैं। वह "मिषतोवशी" है। समस्त संसार को उसी ने वश में किया हुआ है। उसी की शरण में जाने से अमृत सुख मिलेगा अन्यथा नहीं। "यस्य छाया अमृतं यस्य मृत्यु जिसका आश्रय लेना ही मोक्षसुखदायक है, जिससे विमुख होना मृत्यु आदि महान् दुःखों का कारण है। अतः आओ प्यारे भाइयो आओ। यदि पाप और निन्दित कर्मों से बचना है तो उसी महान् पिता की चरण शरण में आवो जिसका कि यह सब पसारा है। प्रभुदेव हमें बुद्धि और शक्ति प्रदान कर कि हम उसकी कल्याणी वाणी के मर्म को समझते हुए जीवन में घटा सकें और जीवन को सफल बना सकें।

ओ३म् शम्।

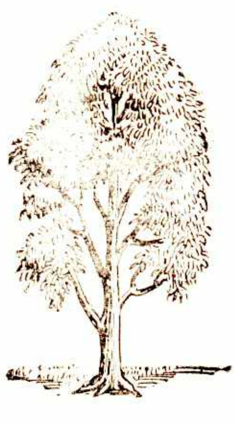

आदर्श गृहस्थी

साधु की खोज

हरिद्वार का मेला था, एक सद् गृहस्थी भोजन उठाए स्त्री तथा बालकों को साथ लिए गंगा तट पर जा किसी साधु की खोज कर रहा था कि एक साधु कमण्डल उठाए से भेंट हो गई।

साधु—वत्स ! क्यों अधिक खोज करता फिरता है ! इतनी दूर निकल आया। बालकों को भी विश्रान्त किया, कोई साधु आपको योग्य प्रतीत नहीं हुआ। आपके भोजन में कौन सी विशेषता है कि इतनी खोज में भ्रमण कर रहे हो ! भोजन खिलाने में अधिक छान बीन न किया करो।

भूखे को रोटी

गृहस्थी- भगवन् ! आपने यह बात कैसे जान ली ?

साधु—हम ने तो नहीं जाना, हमारी क्षुधा ने जान लिया ! क्षुधा नेत्र हीन होती है, जैसे बिल्ली को स्वप्न में भी छिछड़ सूझते हैं, ऐसे क्षुधा को भी भोजन दिखाई देता है। भूखा भूखे को मिल जाए तो ईर्ष्या करते हैं, परन्तु तुम भी भूखे हो और मैं भी भूखा हूं, हम दोनों मिल कर प्रसन्न हो रहे हैं, समझे मेरी बात को ? सत्य है ना ?

गृहस्थी—आप भी भूखे नहीं और मैं भी भूखा नहीं। आपकी बातें तो ऐसी हैं जैसे कोई तृप्त (रजा हुआ) बात करता है और मुझे प्रभु कृपा से सब कुछ प्राप्त है, कोई भूख नहीं।

साधु—अच्छा तो तुम सत्य कहते होगे, हमने भूल की, मौज करो, जहां जाना चाहते हो जाओ ! हम भी आगे क्षेत्र को जा रहे हैं।

गृहस्थी-न महाराज न ! मेरा कहने का यह अभिप्राय नहीं कि आप भोजन कर चुके हैं अपितु यह कि आप में इच्छा नहीं। भोजन का तो समय है, अवश्य आपने खाया होगा। लीजिए ! मेरा सौभाग्य घर में ही

मिल गया साधु बैठ गए। कहा वत्स ! हमको आपकी श्रद्धा ने नहीं बिठाया, हम तो अपने दोष को दूर करने के लिये बैठ गए हैं।

गृहस्थी—भगवन् ! दोष तो मुझ से हुआ, क्षमा प्रार्थी हूं, आपने अपने में क्या दोष देख लिया ?

साधु—बहुत छान बीन करके भोजन खिलाने वाला महान् स्वार्थी और अभिमानी होता है, साधुओं को ऐसे का भोजन न करना चाहिए। परन्तु बैठ इसलिए गए कि आप भूले हो रहोगे यदि हम आप से उपेक्षा करके चल देते।

क्षुधा दो प्रकार की होती है।

तो सुनो ! मेरी क्षुधा तो प्राण को लगी है और पेट में है और पेट में है, थोड़े से अन्न से मिट जायेगी और आपकी क्षुधा लगी मन को, और है भी मन में। मन को क्षुधा है स्वर्ग की जिसे देखा किसी ने नहीं। मिटेगी अथवा नहीं ? और कब मिटेगी ? इसे कोई जान नहीं सकता, प्रभु जाने !

गृहस्थी—भगवन् ! यह तो आपका दोष नहीं। मेरी भूल को दूर करने के लिये आप बैठ गए, यह साधुओं का गुण विशेष माना गया है।

दुर्गुण और अवगुण

साधु—हमने अपने अन्दर एक दुर्गुण भांपा जिसने हम से वाक् छल तथा दम्भ कराया और पुनः एक ऐसा अवगुण भी देखा जिसने तप भङ्ग कराया।

गृहस्थी—मैं तो दुर्गुण और अवगुण के एक ही अर्थ समझता रहा हूं आपने और उलझन डाल दी।

साधु—गुण का अर्थ होता है रज्जु और रज्जु बांधने के काम आती है। जीव बान्धा हुआ है दुर्गुण से तो मनुष्य परमात्मा से दूर हो जाता है और अवगुण से अधोगति होती है। दुः अर्थात् दूर, अव अर्थात् नीचे। बस यह एक स्थूल कसौटी है। जिन कर्मों से मनुष्य का अपने मनुष्यत्व से नीचे पतन होगा वह अवगुण होंगे, और जिन कर्मों से प्रभु से दूर रहेगा वह दुर्गुण हैं।

गृहस्थी—भगवन् ! आपने तो बतलाई परन्तु कोई उदाहरण भी तो हो, ऐसे किस प्रकार समझ में आए ? मैं तो एक साधारण व्यक्ति हूं।

साधु—अच्छा अन्य प्रकार से समझो, जब कोई मनुष्य ऐसा काम

करे जिसे देखकर देखने वालों को सहसा मुख से यह कहना पड़े कि अरे ! तू मनुष्य है अथवा पशु ? तुम से तो पशु भी अच्छे हैं, वे भी ऐसा नहीं करते। तब समझो कि वे ऐसे अवगुण हैं कि एक अवगुण तो उसे पशु बनाने वाले हैं, दूसरे अवगुण उसे पशु से भी नीचे योनि में ले जाने वाले हैं अर्थात् जिनकी उपमा पशुओं से न दी जा सके वह दुर्गुण होंगे अर्थात् जिन कर्मों को पशुओं में करने का साधन नहीं और केवल मनुष्य में हैं उस से बुरे कर्म करने वालों को दुर्गुण कहे जायेंगे।

गृहस्थी—पहली बात तो समझ में आ गई दूसरी अभी पूर्ण रूपेण समझ में नहीं आई।

साधु—अच्छा, तुम ही बताओ, मनुष्य में कौन-कौन सी इन्द्रिय पशुओं से अधिक हैं।

गृहस्थी—वाणी, मन तथा बुद्धि।

साधु—बस-बस ! अब तुमने खूब समझ लिया, असत्य बोलना, बुरा चिन्तन करना और अहङ्कार करना यह दुर्गुण है, इन से प्रभु से सदा दूरी बनी रहती है।

गृहस्थी में श्रद्धा

गृहस्थी में यह उत्तर सुन कर श्रद्धा उत्पन्न हो गई सिर झुकाया और श्रद्धा तथा प्रीति से भोजन कराया, साधु को भोजन में बड़ा रस आया, और प्रसन्न वदन होकर बोला, प्रभु तुम्हारा भला करे।

गृहस्थी की पत्नी ने हाथ जोड़ निवेदन किया, महाराज ! कभी हमारे गृह को पवित्र करने का कष्ट करें। हम अमुक प्रान्त के तेजस्वी ने अपने गृह का पूरा पता बताया।

भोग पिछे फिरता है

साधु ने उत्तर दिया, हमारे अपने वश की बात नहीं, और न हमें अपने भविष्य का ज्ञान है, हां जिस प्रकार अब हमारे भोग को तुम उठाए फिरते थे, और भोक्ता जीव की खोज कर रहे थे, और हमें उस भोग नें बांध लिया, और तुम्हारे निकट कर दिया, भोग पीछे फिरता है अब भी यदि प्रभु देव ने ऐसा किया, तो सम्भव है फिर मिलाप हो जावे।

मिलाप

वर्षों बीत गए, वही साधु भ्रमण करता-करता उनके नगर में पहुंच

गया, परन्तु उस नगर का नाम तथा आकार भी विस्मरण हो चुका था, वह अकस्मात् नगर के बाहर सड़क से एक कूचे में प्रवेश कर रहा था कि कूचे के सर्वप्रथम गृह के बाहर एक बालक खड़ा था साधु ने उनसे सम्बोधन करके धर्मशाला का मार्ग पूछा कहा भगवान् ! यह मेरा घर है आप यहां ही विराजें ।

साधु—तुम कौन हो ?

बालक—क्या आपने नहीं पहचाना ? मैंने तो आप को भली प्रकार पहचान लिया है, हरिद्वार में आप से भेंट हुई थी, और मेरी माता जी ने आप से चरण पधारने के लिये कहा था ।

साधु—हमको स्मरण में नहीं आ रहा, हमें धर्मशाला या कहीं कुटिया का पता बतओ ।

बालक—मैं तो जाने नहीं दूंगा, अपने घर में बिठाऊंगा ।

बालक की सरलता का प्रभाव

(झट बाहर से किवाड़ खोला) और हाथ से पकड़ कर अन्दर ले जाने लगा, साधु बालक के इस सरल स्वभाव को देख अन्दर चला गया ।

साधु—घर में तो कोई है नहीं तुम क्या काम करते हो ?

बालक—मैं पाठशाला में पढ़ता हूं, अर्धवकाश था, मैं इस समय घर कुछ खाने पीने आ जाता हूं आज मैं आया तो किवाड़ बन्द था, अब माता जी कहीं गई होंगी, अब मेरा समय जाने का भी होने वाला है ।

साधु—तो तुम क्या खाया करते हो ?

बालक—कभी मिठाई, कभी रोटी का ग्रास और लस्सी का गिलास पीता हूं ।

बालक की परीक्षा

साधु—तो तुम जल्दी से खा पी लो और फिर चलो कहीं अनुपस्थिति न लगे, गुरु जी क्रुद्ध न हों ।

बालक—महाराज ! कैसे खाऊं ? और क्या खाऊं ? माता जी तो है नहीं, वह आवें तो देवें ।

साधु—अरे भोले बालक ! माता की क्या आवश्यकता है ? देखो, सामने खुली अल्मारी में थाली में मिष्टान्न धरा है, क्या तुमको नहीं दीखती ?

बालक—हां महाराज ! दीखती है परन्तु माता की आज्ञा के बिना ऐसे उठाना भी तो पाप है।

साधु—अरे पाप ? कैसा पाप ? तुम्हारा अपना गृह है। फिर चोरी क्या है ?

बालक—कैसा पाप ? फिर चोरी किसी और प्रकार की होती है ? पता नहीं, मिठाई किसी ओर की हो या किसी और के लिये हो या माता ने यह वस्तु मुझे न देनी हो।

साधु—हां, ऐसा हो सकता है। अच्छा तो निकाल लो वह तो बासी तुम्हारे लिये होती है।

बालक—यह तो है अपनी, परन्तु पता नहीं, माता ने किस किस को कितनी कितनी देनी होगी। वह वस्तु तो माता के अधिकार में है।

साधु—ऐसा प्रतीत होता है कि तुम माता से भय खाते हो। तुम्हारी माता बड़ी निर्दय होगी।

बालक रो पड़ा

माता जी की निंद्रा सुनते ही बालक रो पड़ा। साधु ने समझा कि ठीक ऐसा ही होगा कि माता इसकी निर्दयी है और कहा देखा ना हमने बूझ लिया, तुम भय से रो पड़े।

बालक—न महाराज ! मैं भय से नहीं रोया, मेरी माता जैसी दयालु माता तो कोई बिरला होगी। मेरी माता मेरी माता है।

साधु—फिर तुम क्यों रोटी नहीं ले लेते, यदि माता का भय नहीं।

बालक—हमारे गृह में सब को माता जी ही सब वस्तुएं गृह की अपने हाथ से बांट देती हैं।

साधु—क्या तुम्हारे पिता को भी वही बांट देती हैं।

बालक—हां हां ! मेरे पिता भी अपने हाथ से नहीं उठाते और और उनकी शिक्षा ही यही है और उनकी आज्ञा है।

अस्तेय क्या है ?

गृह की स्वामिनी मेरी माता है वह बिना मांगे और कहे समय की आवश्यकता के अनुसार सबको उचित रूप से पर्याप्त मात्रा में स्वयं दे दिया करती है। मेरे पिता जी का अधिकार अपने का व्यवहार दुकान पर है। अधिकारी तथा स्वामी की आज्ञा के बिना उनकी वस्तु क

उठाना स्तेय है।

पिता जी आ गए

इतने में पिता जी का आना हो गया। उसने ज्यों ही साधु को बैठा देखा, बड़े हर्ष से पाँओं में माथा रक्खा और साधु ने अपने हाथ से उठाया और देखा तो उसे भी नहीं पहचाना। आश्चर्य में रहा, उसने कहा :—

महाराज ! आज तो मेरा सौभाग्य बढ़ा, आपके दर्शन हो गए और फिर घर में अपने आप पदार्पण किया।

मुझे तो अकस्मात् गृह से थैली रुपयों की उठाने के लिये आना पड़ा है। बहुत बहुत धन्यवाद है। मन बड़ा उत्सुक रहा परन्तु आपके स्थान का भी पता न था कि पत्र लिखते।

साधु—अच्छा भाई हमने तो तुमको भी पहचाना। अच्छा ! यह तो पीछे बात करेंगे, तुम्हारे बालक को बहुत देर हो गई है। क्षुधा पिपासा भी इसे लगी है, पाठशाला में भी इसे जाना है, अनुपस्थित अंकित न हो, नहीं तो भूखा जायगा, इसे कुछ खाने पीने को दे दो।

गृहस्थी—भगवन् ! इसकी माता अभी आ जाती है। जल का घट लाने को गई प्रतीत होती है। वह आकर देगी मुझे क्या पता ? आज उसे क्या खिलाना है ? चौके की स्वामिनी तो वही है, मैं कैसे हस्तक्षेप करूं ?

साधु—अरे बालक ! बड़ी क्षुधा लग रही है ना ?

बालक—मुझे तो क्षुधा का विचार ही नहीं रहा। आपके दर्शन से क्षुधा की वृत्ति बदल गई। अब तो यह चिन्ता लग रही थी कि माता जी कहां गई होगी कि देर लगा दी। आपको बिना सेवा कर सके बिठा दिया। माता जी होती तो सेवा करने लग जाती। अब पिता जी आ गए हैं मैं पाठशाला जाता हूँ, फिर मध्याह्न को आकर खाऊँगा।

साधु—तुम्हारा पिता भी बड़ा निर्दयी है कि तुम्हें भूखा देखकर भी दया नहीं करता।

माता का प्रसाद

बालक—न महाराज ! ऐसा नहीं। माता जी जब काई वस्तु देती हैं तो पिता जी ने समझा रक्खा है कि तुम उसे माता का प्रसाद समझा

करो और उसे बड़े प्रेम से खाया करो ताकि तुम में प्रेम भावों की जागृति बनी रहे।

साधु—तो क्या तुम्हारे पिता भी तुम्हारी माता के दिये को प्रसाद स्वीकार करके सेवन करते हैं।

बालक—मुझे इस बात का ज्ञान नहीं। पिता जी जान। मुझे तो अपना तथा अपने भाइयों के लिये ज्ञान है।

साध—हां भाई गृहस्थी ! तनिक तुम बोलो। तुमको क्या समझ कर देती है और तुम क्या समझ कर लेते हो।

गृहस्थी—भगवन् ! मुझे तो वह बड़ी श्रद्धा से भेंट के रूप में पेश करती है और मैं हर्ष और प्रेम से लेकर शुभाशीष देता हूं।

बालक प्रस्थान करने को ही था कि माता भरा घट लिए आ गई। ज्यों ही दृष्टि पड़ी और मुख से निकला वाह भगवान् ! वाह ! आज कैसा उत्तम दिन चढ़ा, मेरा आज सुदिन है। घट रक्खा और बड़े आदर से नमस्कार की।

माता—महाराज ! आप को मेरी अनुपस्थिति से अवश्य कष्ट हुआ होगा, मुझे आज कारणवश कुछ चिर हो गया। मेरा सारा ध्यान तो बालक की ओर रहा कि वह आ गया होगा और प्रतीक्षा में व्याकुल हो रहा होगा। मुझे आज्ञा दीजिए कि मैं आपके पग प्रक्षालन करके सेवा करूं।

साधु—हां-हाँ बहुत शीघ्र सर्वप्रथम यही कार्य करो। बालक बड़ा भूखा है और पाठशाला वापिस जा रहा था।

साधु का सत्कार

माता ने झट मिठाई उठाई और पति देव को ऐसा संकेत किया कि साधु को पता भी न लगा। तीन थालियों में धर कर आ रही थी कि गृहस्थी न लोटा ले जल से साधु के हाथ धुलाने के लिए भेंट किया।

साधु—पहले बच्चे को खा लेने दो उसे विलम्ब हो रहा है।

इतने कहने सुनने में देवी तीन थालियां लेकर आ गई। साधु देख चकित हो गया। अब तीनों को एक ही समय परौस आगे रखीं और लस्सी के गिलास ले आई तब सब ने मिल कर बैठ मिठाई खाई और बालक चला गया।

साधु—अच्छा भक्त प्यारे ! तुम व्यवहारी पुरुष हो, अब आप अपना काम सिद्ध करो और हमें कोई कुटिया एकान्त बतला दो।

गृहस्थी—वाह महाराज ! वाह ! अब आपके दर्शन छोड़ के जाना कहे को ? आप कृपया यहां रहिये, हमारे गृह को पवित्र कीजिए। यह अब आपका ही तो है।

प्रतिज्ञा पूरी करो

साधु—जिस काम के लिए आए और जो तुम्हारी प्रतीक्षा में होंगे, उनको जो क्षति होगी और तुम्हारे काम में जो अनियमता होगी उसक पाप तो हम पर लगेगा और हम गृहस्थियों के गृह में कैसे रहें, हमें तो एकान्त चाहिए, हम साधु हैं।

गृहस्थी—अच्छा आपकी आज्ञा है तो मैं चला जाता हूं, परन्तु महाराज को हम अन्यत्र नहीं जाने देंगे। अब मध्याह्न होने वाला है, भोजन तैयार होता है।

साधु—अच्छा तुम जाओ और हम भोजन तक यहां बैठे हैं। गृहस्थी नमस्कार कर चल दिया।

साधु—देखो देवी ! तुम अपने चूल्हे का काम करो और हम जब तक कहीं बाहर जा बैठते हैं। तुम अकेली स्त्री घर में हो। हम बैठना अच्छा नहीं समझते और फिर हम यहां बैठकर करेंगे भी क्या ?

देवी—मैं ऊपर से गृह में एकान्त बना देती हूं, बाहर कहाँ जा बैठेंगे और यदि यहां भी बैठे रहें, तो यह भी एकान्त है।

साधु—ऊपर हो अथवा नीचे, एकान्त भी हो, तब भी एक अकेली देवी ही गृह में हो, शास्त्र उसे वर्जित करते हैं।

देवी—आप तो साधु हैं, साधक तो नहीं, पुनः आप को ऐसा संशय क्यों ?

साधु—शास्त्रों की आज्ञा माननी चाहिए।

देवी—मुझे तो ऐसा भ्रम नहीं हुआ। शास्त्र क्या कहते हैं ?

शास्त्र आज्ञा का भाव

साधु—शास्त्र कहते हैं कि घर में अकेली स्त्री हो चाहे माता हो अथवा भगिनी अथवा पुत्री भी, तो पुरुष को उसके साथ नहीं रहना चाहिए।

देवी—महाराज ! यह तो आप ही स्पष्ट कर रहे हैं कि किसी पुरुष को किसी अकेली स्त्री के पास अथवा साथ न रहना चाहिए। आप जब साधु बन चुके हैं तो आप में वह पुरुषत्व कहां रह गया जो गृहस्थी में होता है। गृहस्थी के लिए तो स्त्री जाति का रूप भिन्न भिन्न प्रकार होता है। चूंकि उसमें विषय वासनाएं उदार रूप रहती है जिसके उत्तेजित होने का कोई समय और विश्वास नहीं, इसलिए माता, कन्या तथा भगिनी तक के लिये भी वर्जित कर दिया आप माता और भगिनी की छाती तथा गोदी (पट्टों) पर अकेले वर्षों तक नहीं रहे ? क्या उस समय आप पुरुष न थे ?

साधु—देवी ! उस समय तो मेरी विषय वासनाएं और पुरुषत्व सुष्ट अवस्था में थीं।

देवी—तो क्या मनुष्य जब साधना करते-करते अपनी साधना को सिद्ध कर लेता है और साधु बन जाता है तो उसके विषय वासनाओं की वही अवस्था नहीं हो जाती जो एक सुप्त अवस्था की होती है।

साधु—हां, वही हो जाती है। जब तक न हो वह साधु कैसे बन सकता है।

देवी—तो आपको मैं किस रूप में प्रतीत होती हूं।

साधु—देवी के रूप में।

देवी—यदि यह सत्य है तो एक देवो साक्षात देवी के साथ रहते हुए किसी के मन में अदिव्य गुण का उठाना कैसे हो सकता है। और फिर प्रश्न तो एकान्त वास का है। यदि मन इद्रियों के विषय में भ्रमने वाला है तो चाहे निर्जन वन की कुटिया भी हो तब भी उसे एकान्त नहीं और यदि मन विषयों से उपराम हो चुका है और आत्मा से युक्त परमात्मा में लगा है तो संसार और बाजार भी उसके लिये एकांत है।

साधु—बहुत अच्छा और ऊंचा ज्ञान रखती हो। हमें बड़ी प्रसन्नता है परन्तु एक संशय उठता है कि एक देवी के अन्दर इतनी निर्दयता कठोरता अपनी सन्तान के प्रति कभी नहीं देखी गई। तुम्हारा बालक पुत्र आया, उसे क्षुधा लग रही थी और तुम्हारे भय से अपने खाने की वस्तु अपने गृह से भी नहीं उठा सका। इससे अधिक क्या निर्दयता होगी।

देवी—भगवन् ! माता की सच्ची दयालुता तथा प्रेम तो अपनी सन्तान से यही हो सकता है कि उसे दिव्य गुणयुक्त बना दे:—

मनुर्भव

वेद ने कहा, मनुर्भव जनया दैव्यं जनम्' ऐ मनुष्य ! तू मनुष्य बन ! और अपनी सन्तान को दिव्य गुण वाला बना ।

माता किसे कहते हैं

माता का अर्थ भी यही है जो मैंने श्रवण कर रक्खा है अपने पतिदेव से। माता वह है जो (क) मति को बनावे (ख) मान वाला बनावे। गर्भ में तो मति को बनाती है और उत्पन्न होने पर उसे मान वाला बनाने का यत्न करती है।

माता पिता का कर्त्तव्य

हम तो दोनों माता पिता के नाते अपने बालकों को छोटे-छोटे पापों का जिनको घर की चारों भित्तियों के अन्दर पाप नहीं समझा जाता और जिनके अभ्यास से बालक बड़े होकर कुसंस्कारी बन जाते हैं, उनके सुप्त संस्कार जागृत हो कर बलवान् बन जाते हैं और बड़ा होकर जनता की दृष्टि से पतित कर देते हैं, उन्हीं से दूर रहने अथवा रोकने के लिए बड़े प्रेम और प्यार से समझाते हैं और यही माता पिता का कर्त्तव्य है।

दूसरे बालक का आगमन और परीक्षा

अभी यह वार्ता हो रही थी कि दूसरा बालक आ गया, साधु को प्रणाम किया।

साधु—तुम्हारा नाम क्या है ?

बालक—मुझे सुकर्मा कहकर बुलाते हैं।

साधु—यह देवी तुम्हारी क्या लगती है ?

बालक—मेरी माता है।

साधु—तुमको क्या देती है और क्या करती है ?

बालक—मुझे अन्न और ज्ञान आदि सब कुछ देती है और प्रेम करती है और संवार सुधार करती है।

साधु—किस प्रकार का ज्ञान देती है।

बालक—जिससे हम बालक पाप से बचे रहें।

पाप क्या है ?

साधु—पाप क्या होता है ?

बालक—वह कार्य जिससे हमारे शरीर का, मन का अथवा आत्मा का पतन हो उसे पाप कहते है। अथवा संसार अथवा जाति, समाज को हानि अथवा बिगाड़ हो, वह पाप है।

पाप के स्वरूप का दिग्दर्शन

साधु—तुमको किस प्रकार से पाप समझाते हैं।

बालक—कथाओं और दृष्टान्तों से।

साधु—अच्छा कोई चोरी की बात सुनाओ।

कथा

बालक—हमें पिता ने बताया था कि एक स्थान पर सत्संग लगा हुआ था, बहुत जनसंख्या उपस्थित थी। जब सत्संग समाप्त हुआ, एक धनी प्रसिद्ध मान वाला भी बैठा था। उसका एक नवयुवक पुत्र भी वहां उपस्थित था। उसे लघुशङ्का ने वेग किया, वह उठा, जनता की जूतियां मिश्रित पड़ी थीं, उसे अपनी उपान (जूती) ढूंढने से न मिली परन्तु लघुशङ्का के वेग से व्याकुल हो रहा था। अपने पिता की उपान पर दृष्टि पड़ी और उसे पहनकर दौड़ पड़ा। दूर जाकर लघु करना था। इतने में प्रत्येक व्यक्ति ने अपनी-अपनी उपान धारण करनी आरम्भ कर दी पिता चूंकि बड़ा धनी था, वह अन्त में नमस्कार करके बाहर आया, देखा तो जूता नहीं था। कुतूहल किया, बहुत से व्यक्ति एकत्रित हो गए। दैव वशात् कई एक पुलिस के अधिकारी तथा सिपाही भी सत्संग में आया करते थे, वे मानी धनी का बड़ा मान करते थे, वे भी आ गए।

जूते की खोज

थानेदार—सेठ जी ! कहां रक्खी थी ?

धनी—(स्थान दिखाकर) इस स्थान पर रक्खी थी।

सिपाही भी साथ था, थानेदार ने सिपाही को आज्ञा दी कि वहां से जो पादचिह्न जा रहे हैं, उनकी खोज निकालो। सिपाही पादचिह्नों का अनुसरण करता-करता उस स्थान पर पहुंचा जहां से वह नवयुवक आ रहा था, देखा कि उसने वही उपान (जूती) पहन रक्खी है, उसे पकड़ लिया, कहा कि तुम चोर हो ! चलो थानेदार साहब के पास वह बेचारा आश्चर्य तथा चिन्ता में पड़ गया, कहां चोरी की है ? मेरे पिता की उपान है।

सिपाही ने कहा—कुतूहल भी तो तुम्हारे पिता ने मचा रक्खा है। पकड़ कर अन्दर लाया, अभी दूर ही था कि पिता देखकर चकित रह गया।

दूर से देखते ही थानेदार ने कहा—इसे हथकड़ी लगा दो और थाने पर ले चलो!

धनी—यह तो मेरा पुत्र है! इतने में वे समीप आ गये।

थानेदार—तुमने क्यों चोरी की?

युवक—मैंने चोरी तो नहीं की मुझे लघुशङ्का ने तंग किया अपनी उपान नहीं मिली, पिता जी की पहन ली, और चला गया।

थानेदार—चाहे तुम्हारे पिता की है। तुम जानते थे परन्तु तुम्हारे पिता को तो ज्ञान नहीं चोरी क्या है, किसी वस्तु का स्वामी की आज्ञा के बिना उठाना मना है राजकीय नियम के अनुसार यह चोरी है।

अब धनी बेचारे को उलटा झुकना पड़ा और लोगों को भी। वहां के सन्त उपदेश करने वाले यह कुतूहल सुनकर बाहर आए और कहा, देखो पुत्र सचेत रहो वस्तु पिता की अथवा माता की जो तुम्हारे अपने अधिकार में नहीं उसको उनकी आज्ञा के बिना उठाना राज नियमानुसार पाप है यद्यपि आचार सम्बन्धी पाप नहीं तो भी संस्कार तो चोरी तथा प्रमाद के अवश्य उत्पन्न हो जाते हैं।

मनुष्य की सम्पत्ति

यही मनुष्य की सम्पत्ति है अच्छी अथवा बुरी, जिसे सदैव काल साथ रखता है।

दण्ड का लक्ष्य क्या है

अब तुम प्रतिज्ञा कर लो कि कभी घर की वस्तु भी बिना आज्ञा न उठाऊंगा! युवक ने प्रतिज्ञा कर दी और सन्त ने थानेदार से कहा अब इसे क्षमा करना श्रेयकर है। दण्ड का लक्ष्य अथवा अभिप्राय सुधार ही है।

तो ऐसे-ऐसे उदाहरण सदा स्मरण रखते और ध्यान में लाते रहते हैं और अनेक प्रकार के पापों से बचे रहते हैं।

अभिमान चूर

साधु सुन कर बड़ा प्रसन्न हुआ और उसे आशीर्वाद दी। किवाड़

बन्द कर एक चित्त हो बैठा। चित्त में विचार उठने लगे कि कितना उत्तम और श्रेष्ठ गृहस्थ है, वास्तविक साधु तो यही है, मैं तो साधु नाम का हूं मुझे तो अभिमान था कि मैं इनकी भूल को दूर करूंगा परन्तु अब तो मुझे अब अपनी भूल प्रत्यक्ष हो गई।

वृत्ति बदली

फिर साधु समाहित हो गया थोड़े चिर पश्चात् ऊंघ आ गई क्या देखता है कि बहुत सी जनता उपस्थित है और मैं उपदेश कर रहा हूं और जनता प्रशंसा कर रही है कि साधु हों तो ऐसे हों आंख खुल गई सोचने लगा मैं साधु हूं यद्यपि यह गृहस्थी ऊंचे हैं तथापि मैं साधु होने के नाते इनको उपदेश दूं जिससे मैं इनकी दृष्टि में साधु जचूं वृत्ति बदल गई झट देवी को बुला कर कहने लगा—अरी देवी! इधर आइये

देवी–(कर जोड़कर) भगवन्, आज्ञा दीजिये।

साधु—अब वह बताएं आप जिस समय काम करती रहती हैं आपका मन उसी काम में रहता है अथवा संसार के अन्य-अन्य विषयों में भी दौड़ता रहता है जैसे मन चञ्चल है।

देवी—मुझे कार्य आरम्भ का तो पता लगता है परन्तु समाप्ति अपने आप हो जाती है। मेरा कार्य मेरे मन तथा इन्द्रियों से होता रहता है। किन्तु नाम के आश्रय से बस और कुछ नहीं जानती।

जाओ तपस्या करो

साधु—अच्छा तू तो मेरी माता है तुझे मैं अब देवी के नाम से नहीं पुकारूंगा माता जी के नाम सम्बोधन करूंगा।

देवी—फिर आप कृपा कीजिये भोजन कर लीजिये और कहीं एकान्त स्थान पर जा कर अभी साधु बनने के लिए तपस्या कीजिये आपकी दृष्टि आपके शब्दों के अनुसार (एक पुरुष अकेला माता के साथ भी न रहे, घटिया हो गई है आप में अब रूप का भेद आ गया है तो रङ्ग का भी आ जावेगा रंग ही भंग डालता है।

विवेक की प्राप्ति कब होती है?

साधु विस्मित हो गया और अपने अन्दर विवेक ज्ञान और तप त्रुटि को अनुभव करने लगा कि मेरा तप तो बहुत था, वर्षों तक का जीवन व्यतीत किया, एकान्त और वन में रहा परन्तु स्यात् अभिमान के कारण विवेक प्राप्ति नहीं कर सका।

वास्तविक विवेक तब तक प्राप्त नहीं हो सकता जब तक अभिमान अहङ्कार मनुष्य में रहता है चाहे कितना ज्ञानो ध्यानी अथवा कर्म कांडी क्यों न हो। प्रभु करें कि लोगों को वास्तविक विवेक की प्राप्ति हो ताकि आश्रम मर्यादा का पूरः करते हुए आदर्श गृहस्थी बन सकें।

ओ३म् शम्।

ओ३म्

हे प्रभु, हे प्रभु, हे प्रभु, हे प्रभु,
अंदर तूं बाहर तूं, तूं ही तूं, तूं ही तूं ।।

१. तेरी रचना का अंत न पाया किसी ।
तेरा भेद न सारा बताया किसी ।
तेरा ज्ञान न पूरा सुनाया किसी ।
है तूं व्यापक सब से ही न्यारा है तूं ।। हे ।।

२. ध्यानी ध्यान लगा कर हार गये ।
ऋषि मुनि भी कर सच्चा प्यार गये ।
योगी दर्शन पा बलिहार गये ।
कर जोड़ झुकूं मेरा स्वामी है तूं ।। हे ।।

३. तेरे द्वार आई भटकाई पिता ।
कोटि जन्मों से मेरी जुदाई पिता ।
तेरे दर पर हो मेरी सुनाई पिता ।
रहूँ तुझ में मगन मेरा जीवन हो तूं ।। हे प्रभु ।।

ओ३म्

प्रभु भक्ति का रंग चढ़ा दो,
मेरा जीवन सफ़ल बना दो ।।

१. तेरी भक्ति है प्रेम प्याला ।
ऐह तां पिवै कोई करमां वाला ।।
प्रभु प्रेम प्याला पिला दो मेरा······

२. तेरी भक्ति में मन को लगाऊँ ।
सारे दुःख दर्द अपने मिटाऊँ ।।
सारा वैर विरोध हटा दो । मेरा······

३. जर्रे जर्रे में तूं है समाया ।
तेरा अंत कहीं भी न पाया ।
सत्य ज्ञान की ज्योत जगा दो । मेरा······

४. अपने हृदय में तुझ को बसाऊँ ।
रोम रोम में तुझ को रमाऊँ ।
प्रभु अपना ही दर्श दिखा दो । मेरा······

ओ३म्

पार कौन लगाए गा, बिनां तेरे दीना बंधू ।

१. मन के सागर में अंधियारा ।
नजर न आवे कहीं उजियारा ::
राह कौन दिखाए गा । बिना..............

२. जन्म अमोलक सुन्दर तन है ।
आयु बीती बिन सिमरन ॥
प्रीतो कौन बढ़ाए गा बिनां.........

३. इक इक आस पुकार रहा है ।
तेरी ओर निहार रही है ॥
करुणा कौन दिखाए गा । बिनां...........

ओ३म्

जय हो बांणी वेदां दी, सच्ची बाणी वेदां दी ।
नैय्या पार लगावे बांणी वेदां दी ।
बुद्धि शुद्ध बनावे बांणी वेदां दी ।
सब अंधकार मिटावे बाँणी वेदा दी । जय हो बांणी......

१. इस वेदां दी खातिर स्वामी विरजानन्द जो आया ।
अन्तर मुख हो करी तपस्या, वेदां दा रहस्य बताया ॥
बांणी वेदां दी । जय हो............

२. इस वेदां दी खातिर स्वामी दयानन्द जी आए ।
सब सुख छोड़े बन बन घूमे, वेदां दा नाद बजाए ॥
बांणी वेदां दी...........

३. इस वेदां दी खातिर स्वामी प्रभु आश्रित जी आए ।
गायत्री यज्ञ की महिमा गाकर, घर घर वेद पहुंचाए ।
बांणी वेदां दी । जय...........

४. परम पिता की है यह बांणी, परम धाम पहुंचावे ।
शुद्ध हृदय से करे जो चिन्तन, घट में दर्श दिखावे ।
बांणी वेदां दी । जय...........

ओ३म्

हम सब मिल कर दाता आए तेरे दरबार।
झोली भर दो सब की, तेरे पूर्ण भंडार ॥
करुणा हाथ पसार, नय्या है मझदार।
बिनती है बारम्बार, सुन लो मेरी पुकार ॥
हम सब..........

२. श्रद्धा प्रेम बढ़ा दो, ज्ञान ज्योति जगा दो।
भक्ति रंग चढ़ा दो, कर दो भव से हीपार ॥
हम सब........

३. घट में आसन हो तेरा, मुझ पै शासन हो तेरा।
कर दो दूर अंधेरा, खोलो अपना द्वार ॥
हम सब..........

ओ३म्

खाकी बंदे तूं खाक है होना, हीरा जन्म क्यों व्यर्थ है खोना।
अन्त होवेगा खाक बिछौना, हीरा जन्म क्यों व्यर्थ है खोना।

१. खाक होवेगी सुन्दर काया।
साथ जाए न दौलत माया ॥
शुभ कर्मों का बीज था बोना ॥ हीरा........

२. मौत का घंटा पल में बजेगा।
सारी दुनियां को क्षण में तजेगा ॥
टूट जाए गा कच्चा खिलौना। हीरा.......
हीरे जन्म दी कदर न पाई।
विषयां संग भारी प्रीत लगाई ॥
साथी मां बाप भाई न होना ॥ । हीरा........

४. जग में रह कर के बन जा न्यारा।
घट के अन्दर बसा ओ३म् प्यारा ॥
याद कर प्रातः वेले न सोना ॥ हीरा

ओ३म्

१. दया करो भगवान्, हम सब पर अब दया करो।
घनघोर अंधेरा छाया है।
माया ने मन भरमाया है ।।
हैं बड़े-बड़े तूफान। हम........

२. तेरा चिन्तन हो, तेरा सिमरन हो।
गुण गायन हो, तेरा भजन भी हो।
दो भक्ति का वरदान। हम........

३. तेरी आज्ञा का पालन करें।
सत्य धर्म को हम धारण करें।
हो कृपा करुणा निधान। हम........

४. प्रभु तेरा एक सहारा हो।
मन में बस ओ३म प्यारा हो।
जीवन का हो कल्याण। हम........

---

१. वेद की वाणी पढ़े जो प्राणी, भव सागर से पार हो जाए।
जीवन का ही सार है इस में,
मानव का आधार है इस में ।।
सत्पथ का व्यवहार है इस में, शुद्ध हृदय से इस को ध्याये।

२. वेद प्रभु की अमृत है ज्योति।
अंदर पावे हीरे मोती ।।
दिन-दिन उस की उन्नति है होती, आनंद से वह न फूला समाए ।।

३. वेद की ाणी से जो यज्ञ करते।
नाम रतन धन से घट भरते ।।
दिव्य गुणों को धारण करते, जग में पर उपकार कमाए।

४. ऋषि मुनियों ने वेद को जाना।
योगी जनों ने रहस्य पहचाना।
छूट गया फि लोक में आना, नाम उन्हीं का अमर हो जाए ।।

५. प्रभो, श्रद्धा भक्ति की लगन लगा दो।
मन बुद्धि मेरी शुद्ध बना दो।
वेद अमृत का झरना बहादो, चरणों में सीस मेरा झुक जाए।

ओ३म्

हे परम पिता परमेश्वर, जीवन सुधार कर।
कई जन्मों की भटकाई, मेरा उद्धार कर ॥

१. विषयों की घनघोर घटाएं मुझे सता रहीं,
है मोह ने मुझ को जकड़ा, माया मन भरमा रही।
सब वैर विरोध हटा कर, जीवन ... ...

२. परदा पड़ा अज्ञान का मैं भूली सत्य को, मैं ... ...
शुभ धर्म कर्म को छोड़ कर गई उलटे पथ को। गई ... ...
ज्ञान की ज्योत जगा कर जीवन ... ...

३. दीन दयाल दया के सागर, करुणा हाथ पसार।
जग से नाता तोड़ूं अपना, होवे तुझ से प्यार। होवे ... ...
भक्ति का रंग चढ़ा कर। जीवन ... ...

ओ३म्

मुझे केवल आस तुम्हारी, प्रभु जी अब दर्शन दो।

१. सब दर छोड़ तेरे दर आई।
पापों दुःखों से हूँ घबराई ॥
मैं तो पकड़ी ओट तुम्हारी। प्रभु ... ...

२. कब से तुझ को ढूंढ़ रही हूँ।
ढूंढ़ ढूंढ़ कर हार गई हूँ।
कई जन्म जन्म की मारी। प्रभु ... ...

३. जीवन नैया डग मग डोले।
पग पग पर खाए हिचकोले।
अब तो आई शरण तुम्हारी प्रभु ... ...

४. हृदय में अपने तुझ को बिठाऊं।
तुझ से जीवन ज्योत जगाऊं ॥
तेरे चरणों पै जाऊं बलिहारी। प्रभु ... ...

ओ३म्

प्रभो ऐसे बसो मेरे मन में ।
तुझे ढूंढूं न मैं बन बन में ॥

१. रोम रोम में नजर तू आवे ।
स्वास सिमरन से खाली न जावे ॥
ध्यान होवे तेरे चिन्तन में । तुझे… …

२. देख रचना तेरी महिमा गाऊँ ।
सारे विषयों से मैं चित्त हटाऊँ ॥
प्रेम आंसू बहे विहरन में । तुझे… …

३. मन मंदिर में आसन हो तेरा ॥
आज्ञा मानू मैं, शासन हो तेरा ॥
होवे जीवन सफल दर्शन में । तुझे… …

ओ३म्

मेरी वाणी तेरा यश गावे सदा ।

१. ओ३म् नाम का सिमरन करके ।
दया भाव हृदय में धर के ॥
ज्ञान की ज्योत जगावे सदा ॥ मेरी… …

२. कटु कठोर वचन न बोले ।
क्रोध का जहर कभी न घोले ॥
दुखियों के दर्द मिटावे सदा । मेरी… …

३. शुद्ध और निर्मल हो मेरी वाणी ।
प्रेम की गंगा बहावे सदा । मेरी… …

४. तेरी वाणी से प्यार हो इतना ।
सृष्टि का विस्तार है जितना ॥
तेरी याद में अमृत पावे सदा । मेरी… …

ओ३म्

१. शुद्ध हृदय हो तुझ को पुकारे।
निर्मल वाणी हो ओ३म् उचारे ॥
वाणी बोलूँ प्रभु तू ही दरशे।
हर इक अंग से रस तेरा बरसे ॥
मेधा बुद्धि हो सब कुछ मैं वारूं। निर्मल··· ···
२. वेद वाणी होवे मेरा गहना।
सत्य की आज्ञा पै हो मेरा चलना ॥
शील संतोष का वस्त्र धारूं। निर्मल··· ···
३. ज्ञान ज्योति से मुझ को सुधारो।
प्रेम भक्ति को हृदय में धारो ॥
तेरे दर पर ही झोली पसारूं। निर्मल··· ···

ओ३म्

मेरी यह भावना भगवन्, तुझे अपना बनाऊं मैं।
तेरे चरणों में आकर के, गीत भक्ति के गाऊं मैं ॥
१. जो रिश्तेदार हैं मेरे, सभी मतलब के साथी हैं।
मेरी ममता हटा भगवन्, तेरे संग प्रीत लाऊं मैं ॥
२. यह धन दौलत महल माड़ी, सभी का क्या ठिकाना है।
मुझे बल शक्ति दो भगवन्, आसक्ति को हटाऊं मैं ॥
३. मेरा तन मन तेरे सिमरन में होवे रात दिन भगवन्
दुई परदा हटा भगवन्, तेरा दर्शन ही पाऊं मैं ॥

ओ३म्

जीवन होवे प्रभु दे प्यार वास्ते
तन मन धन उपकार वास्ते।
१. सुन्दर जन्म पाके प्रभु याद न कीता, याद न कीता।
यौवन मस्त हुई, बचपन खेल में बीता, खेल में बीता।
पाप ही कमाए परिवार वास्ते। तन ··· ···
२. नश्वर माया देख मेरा मन डोलया, मन डोलया।
विषयां विकारां विच प्रभु भुलिया, प्रभु भुलिया।
हीरे भी लुटाए घर बार वास्ते। तन··· ···

३, ईर्ष्या द्वेष नाल मन जलया, मन जलया ।
स्वार्थ अंहकार ने भी रस्ता मलया, रस्ता मलया ।
क्रोध ने गिराया व्यवहार वास्ते । तन ···

४. तेरे द्वारे आई हां सुधारो बिगड़ी, सुधारो बिगड़ी
चरण लगावो प्रभु मैं हां बिछड़ी, मैं हां बिछड़ी ।
सारे सुख छोड़ां मैं दीदार वास्ते । तन ···

ओ३म्

अंधेरा दूर कर भगवन्, तेरी ज्योति जगे मन में
दुई परदा हटा भगवन्, झुके यह सीस चरणन में

१. अनादि काल से मेरा, यह मन मंदिर पड़ा सूना ।
बसो हृदय में हे भगवन्··· तेरी,

२. हटा दो जाल माया का, मिटा दो द्वेष की अग्नि ।
निर्मल कर दो हे भगवन् ··· तेरी

३. तेरी रचना को जब देखूं, उसी क्षण हो तेरा सिमरन
बढ़ा दो ज्ञान हे भगवन् ··· तेरी,

ओ३म्

सृष्टि के तार-तार में मेरे ओ३म् छिपे बैठे हैं ।
इस माया के विस्तार में, मेरे ओ३म् छिपे बैठे हैं ॥

१. ये लोक लोकान्तर सारे ।
क्या दृश्य हैं न्यारे न्यारे ।।
हर श्वास की झंकार में मेरे······

२. नभ पृथ्वी चांद सितारे ।
ये पर्वत भारे भारे ।
सिन्धु की गहरी धार में मेरे··· ···

३. ऋषि मुनि तेरा यश गाते ।
योगी जन ध्यान लगाते ।।
भक्तों की मस्त पुकार में मेरे... ...

४. कहीं अंत न तेरा पाया।
सब हारे सीस झुकाया।
मुक्ति के ऊँचे द्वार में मेरे …

ओ३म्

मेरा मन बड़े औगणां दी खान प्रभु जी,
किस विध मेरा होवेगा कल्याण प्रभु जी।

१. इस मन नू साफ भी कीता न।
प्रभु तेरे ते विश्वास भी कीता न।
ऐंवे जन्म गवांया हो नादान प्रभु जी …

२. कोटि जन्मों से मन भटकांवदा ऐ।
तैनू छोड़ विषयां वल जांवदा ऐ।
हीरे लुट गये बिन गुणगान प्रभु जी, किस…

३. धन माल ते संपत्ति परिवार सारा।
रिश्तेदार ते संबन्धी होवे पुत्र प्यारा॥
अंत वेले कोई न साथी निकले प्राण प्रभु जी …

४. कर कृपा प्रीत लगावां मैं।
प्रभु भक्ति दा रंग चढ़ावां मैं।
पल-पल मैंनू होवे तेरा ध्यान प्रभु जी।

ओ३म्

आई हूँ तेरे दर पर, भगवन् सुधार कर दे।
भूलूं न तुझ को पल भर, ऐसा विचार भर दे।

१. माया ही है लुभाती, सच्चा न कोई साथी।
स्वार्थ भरे हैं नाती, अपना ही प्यार भर दे।

२. कोटि जन्म से बिछुड़ी, तुझ को न पाया भगवन्।
दूई सभी हटा कर, अधिकार मेरा कर दे॥

३. हर श्वास में ही सिमरूं, हर रंग में तुझ को देखूं।
घट में तुझे बसाऊं, मृत्यु से पार कर दे।

ओ३म्

कर जा भला कुछ दुनियां का, न हीरा जन्म गंवा प्यारे।
हर दिल में तेरी याद रहे, कोई ऐसा कर्म कमा प्यारे

१. तू परम धाम से आया है।
यह शुभ अवसर ही पाया है।
इक चमक निराली पैदा कर, दे दुनियां को चमका प्यारे।

२. यह जन्म अमोलक पाकर के।
जा कुछ तो नेकी कमा कर के।
दुखियों के दर्द मिटा कर के, सदा पर उपकार कमा प्यारे॥

३. तेरी जब तक तन में जान रहे।
तुझे पर सेवा का ध्यान रहे॥
हो निन्दा या तारीफ तेरी, उस ओर न कान लगा प्यारे॥

४. भगवान् के दर पर अलख जगा।
वर मेधा बुद्धि को ही पा।
प्रभु के चरणों में सीस झुका, फिर घट में दर्शन पा प्यारे॥

ओ३म्

मेरी सच्ची सरकार, तेरा ऊंचा दरबार, तेरा ऊंचा दरबार
भागां वाला जीव कोई पावे, हाँ पावे।

१. कुरबान जावां तेरी शान तों॥
है निराली जो सारे जहान तों॥
कहँदे ऋषि मुनि संत, तेरी महिमा है बेअंत, अंत न कोई पावे।

२. वेद शास्त्र भी तुझे पुकारें।
यति सती भी गाकर हारे।
तेरी महिमा अपरम्पार, कोई पा सके न पार, क्या कोई आख
सुनावे।

३. तेरे चरणां तों बलि बलि जावां।
करां दर्शन अमृत पावां।
मेरी विनती बारम्बार, होवे तेरे नाल प्यार।
होर न कोई भावे॥